

•

\$ 0 x =

·"



4 <u>:</u> :	परवावना स अनुमान	30%
	निगमन दी महत्ता	३७७
	शह जानाग	3=t
	उत्सर्भ ग्रीर ग्रुपयाद सा सम्बन्ध	876
* t	महाराज्य	*30 \$
	अनुगानी संगमी स्थादाद	850
	वर्ष कार्यी प्रथम	8=6
	देश परेना के नाम हत नियम	e= î.
	नो गर अस्देव तो मति स रचित	33.
	* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *	

दर । शायनमा । सम्बन्ध में स्पर्णाहरण

£= î. 331 409



मंगल शस्त्र से कुछ भिन्न भी है और कुछ ग्रभिन्न भी है:

नवांगी टीकाकार श्राचार भगवान श्रीमद् श्रमयदेव सूरीश्वर जी महाराजा, 'विश्वाह पन्नति' नामक पाचवे श्र गमूत्र जो श्र गसूत्र 'श्री भगवतीजी सूत्र' ऐसे पूज्यवाचक नाम से जैन समाज में मुशसिद्ध हैं। इस श्र गमूत्र की विवृत्ति की रचना करने के लिये उत्साहित बने हैं, इत्माहित बने हैं—उनना ही नहीं, श्रपितु उसमें प्रवृत्त हुए हैं—ऐसा भी कर गाते हैं: वया कि श्राप श्री ने मगनाचरण करते समय मारे ही भगमान श्री जिनेज्यर देवों की स्तुति वरने के पश्चान् क्या करते हैं आरे मगज जैसे शास्त्र से कदाचित् कि प्रवान श्री हिना जा गाते हैं इसे श्रीर मगज जैसे शास्त्र से कदाचित् कि श्री किया जाना है। इसी श्री कार मगल का श्री का स्वाचिद् श्री श्री किया जाना है। इसी विश्वार मगल को श्रीनि को हम यदि उस विश्व की स्तुत्त की स्तुत की स्तुत्त की स्तुत्त की स्तुत की स्तुत्त की स्तुत्त की स्तुत की स

माना शाम्य में अभिन्न है ह

भगवान श्री जिनेश्वर देवो का है यौर भगवान श्री जिनेश्वर देव स्याद्वादी ही होते हैं। उन तिराने वालो का श्रौर उनका अनुसरण करने जालो का कोई भी बनन ले। यह बचन स्यात् पद से युक्त हो श्रमवा स्यात् पद से युक्त न हो। परन्तु उस नचन में स्यात् पद रहा हुआ ही होता है, निविवाद सप से रहा हुआ है, ऐसा ही समसे। इसीलिये भगवान श्री जिनेश्वर देवों का या उन तारको का उपयोग पूर्वेर श्रनुसरण कर नीलने वालो का नचन 'मिथ्या' श्रयवा मिथ्या-रप' नाम नहीं हो गाना। श्री जैन शामन के शास्त्रों के किसी भी बचन सी 'मिथ्या' या 'मिथ्यान्यवाला' कहने का घोर पाप नो बे दी बच साने हैं, को मिस्सान्य साना कहने का घोर पाप नो बे जिन्नकी गीर मिथ्यान्य नामक श्राच्या के महान् श्रमु से मोहित हो चुकी हो। स्वराह्य है नामप से साक्षात् स्थात् पद न हो तो भी, इस कार का उत्तर स्थार वस्त समय उन्हें मन में स्थात् पद ना ही निक्ता का स्थार्थ।

भाव माग्य के भागम के स्ट-

भगवान श्री जिनेश्वर देवो का है और भगवान श्री जिनेश्वर देव स्याद्रादी ही होते हैं। इन निराने वालो का श्रीर इनका अनुसरण करने वालो का कोई भी वचन ले। यह वचन स्यान् पद से युक्त हो प्रश्त वचन में स्यान् पद रहा हुआ हो होना है, निर्विताद रूप से रहा हुआ है, ऐसा हो समभे। इमीलिये भगवान श्री जिनेश्वर देवों का या उन तारकों का उपयोग पूर्वर धनुसरण पर बोलने बालों का तचन 'मिथ्या' अथवा मिथ्यान्य' वाला नहीं हो सरना। श्री जैन जामन के जास्त्रों के किमी भी वचन वो 'मिथ्या' माना । श्री जैन जामन के जास्त्रों के किमी भी वचन वो 'मिथ्या' मा 'मिथ्यान्याता' कहने का धोर पाप लो वे ही कर सकते हैं, जो मिथ्यान्य से चरकर में फन गण हो और इसमें क्लिकी मार्ग मिथान्य नामक माना हे महान् अश्व से मोहित हो चार्य हो है। हवाहारी के बारप में स्थान करने साथ उन्हें सन में स्थान् पद वा हो नाम का का साथ परान्य का स्थान करने साथ उन्हें सन में स्थान् पद था ही-

भाष मगरा के भानका की गति :

टोकात्रो मे से तीसरी सूत्र टीका, जो कि यही श्री भगवतीजी सूत्र नामक पाचव ग्रंग नृत्र की टीका है उसकी रचना करने के लिये तत्पर बने हुए ग्रावायं भगवन श्रीगद् श्रभयदेश मूरीश्वर जी महा-राजा ने भाव मगलाचरए। करते हुए ग्राटम्भ मै श्री जिन स्तृति की है। एक श्लोक के द्वारा सामान्य प्रकार से श्री जिन स्तुति करके, एन महानि ने सभी भगवान श्री जिनेश्वर देवो की स्तुति करते हुए परम तारक भगवान श्री जिनेण्यर की पन्द्रह विशेषस्पी में स्तुति की है। प्रज ता हम इन पन्द्रह विशेषणों के सम्बन्ध में काफी विचारणा कर वासे हैं । इस प्रकार, सभी भगवान श्री जिनेश्वर देशों की रति करने के बाद भी में महींप दो प्लाकों हारा फरमाते है हि ५वे वर्षमान स्वामीजी का, श्रीमत् मुखर्मास्वामीजी को, सबै भनतीय युप्ते को कोर श्री सपत भगवान की यागी को नमस्कार करें। मरे थी भगानीता सप की तो होता और नुगाँ है उसे और भा जोगिसिन मंदिसर सन्ता ती जो वृतिया है उनके स्रशो का रोक्तर रह, में देन परित्र धनात को गुत्र विशेष प्रशास में इंड्रोड क्राई है इस हका में गाउ रूप से समा भी है सीर के हैं है है है के दे पहार पहान का साम की बिह स्तुविद्वास हो हर है है जो ले हैं है है के कहा एक स्थित है कि सीगर प्राप्ति इत्तर द्वार १९ १५ र ति दूसरे इतार में भी माल विचार कार दश्रील के ने संसद १०५० की बना दिला

for from .

माथ भी उद्धत्ता पूर्वक श्राचरण त करना ऐसा व्यवहार दो तीन दशादि पूर्व तो अच्छी प्रकार से प्रवित्त था। श्राज ऐसे वृद्धों की श्राय श्रवशा ही की जाती है। माता पितादि को श्रीर बड़ों को नम-मार करने का द्यवहार तो गया, परन्तु उनके साथ बात करने की रीति भी बदल गई है श्रीर उसमें उद्धता था गई है। विद्यादाता शिक्षाों के माथ का व्यवहार भी उतना ही, श्रयथा तो इममें भी श्रीर बदल चुना है श्रीर बिगट चुका है। विद्यादाता शिक्षकरणा विनय से श्रमन्न होकर बिद्या ना दान दे, इसके स्थान पर श्राज उन जिल्हाों को विद्यावियों में भी उनते रहना पड़ता है। यदि श्रापमें गमा श्रीर वनत्रता ये दो गुण होने तो श्रापके मांमारिक द्यवहार उनने स्थुपित न बन पाने।

देवस्थानो और धर्मस्थानो मे आए हुए दोषो तथा भक्ति की न्यूनता का मूल भी क्या है ?

फ़ुतज्ञता ग्रीर नम्रता गुए। के श्रभाव के कारए। धार्मिक व्य-वतारों में भी काफी विगाउ हो गया है और दिन प्रतिदिन यह विगाड भी वढ़ता जाता है। श्रापक के रूप में ग्रापके जो-जो धार्मिक वयव-हार गिने जाने है उनमें तथा साध के रूप में हमारे जो जो धार्मिक व्यातार पिने जाने है उनमें सभी में ग्राज कृतज्ञता श्रीर नम्रता सबन्धी पुरारे का भ्रमाव होने म भ्रमेक भ्रमिक्द्रनीय प्रशुभ तत्व धूम गये है गोर सुभ तरा धीरे-धीर घटने जाते है। भगवान श्री जिनेंग्वर देवो धीर पुर्रीद का हमार उपर कैमा रैमा श्रीर नितना फितना उपवार 🗦 इसे सम्बन्ध में याद में सीर क्षम में वारवार विचार करने वाले कि के रे देव गुरु के उपराय को बाद कर, इस उपसारक सीबी की िया परार से मीन्य वर्ग वे मनास्य करने वाले कितने ? ग्राप रभी याँ प्राप्ता प्रति सामगी के प्रमुखार देव और गुरु की भक्ति राज ही राम को हा जो देयरयान योग धर्मस्यान जिस प्रकार ष्ट १ राष्ट्रा वस्ता स्ट्री का एक प्रधार उन स्थानी की असाया रकार कर राज ५ १ दे स्थाना और अन्य धनस्थाना में आपी इ. १ १ १ इ.च. भारत का ग्रामको एक्टमन किल्ला है। ग्रामकाल की निजन

िम्बयों के लिये इतना प्रधिक एवं और जो देव-गुरु मुक्ते मोक्ष मार्ग की मेरी प्राराधना में प्ररक थौर सहायक है, उनकी भक्ति में या तो रानं तिनक नहीं प्रथवा नगण्य सा सर्च ?' परन्तु कृतज्ञता गुए। हो भीर इससे देव गुरू के उपकार का श्रापको श्रपनी समक्त के श्रनुसार भी विनार प्राता रहता हो, तो श्रापको ऐसा विचार प्राए न ?

देय-गुरु-धमं के सम्बन्ध में आई हुई अवज्ञा :

ष्ट्रवाता गुग के अभाव के कारण जैसे भक्ति के कार्यों में वर्षी क्रां और है, उसी प्रकार नम्रता गुग के प्रभाव के कारण देव गुम में प्राचानना हो ऐसी प्रश्नियों भी बढ़ती जाती हैं। आपको जन रिसी भी बढ़े व्यक्ति सो मिलने हेतु जाना होता है, तब आपको रश-भाषित गण में ही जिनार आता है कि 'वहां मुभे कैंगा वेण आदि भारण कर जाना चात्रिये वहा मुभे किस प्रकार प्रवेण करना चात्रिये किस प्रकार नमन गरना चात्रिये। किस प्रकार बोलना चात्रिये और किस प्रकार नमन गरना चात्रिये। किस प्रकार बोलना चात्रिये और किस प्रकार कि है में मिलने जा रहा है उनके बचन को स्वीकार करना चार्ति है। पर्वाच भी गारी महाराजा वायगराव या गवर्नर के कि किस के किस के किस के किस के किस के कि किस के किस के



उमे पता चल जाय तो भी वह बात उसके अन्तरतम में बैठ जाती है और उमें भी वह अपने ऊपर उपकार मानता है। इस कृतज्ञता गुरा के माथ, यदि नम्रता गुगा हो, तो उमे सद्गुरु का योग बहुत अच्छी तरह फातित होता है क्योंकि वह सद्गुरु का सम्मान किये बिना रहेगा नहीं, और सद्गुर द्वारा कहीं हुई कोई भी बात यदि उसे स्वय को सम्भ में न आएगी, तब भी सामना नहीं करेगा परन्तु अवसरोचित रीति से पूछ कर अपनी शका का समाधान करने का प्रयत्न करेगा।

धर्माराधना मरलता से हो सकती है:

तृतन और नम व्यक्ति जिस प्रकार धर्म को सरलता से प्राप्त रर सरता है उसी प्राप्त धर्म की आराधना भी सरलता से कर सराग है। धर्मी जनों को धर्म की आराधना करने में उनकी कृतज्ञता और नम्राप धरी महायर होती है। व्यक्ति धर्म को प्राप्त करें, कि दस्म विका जाता है। उपतार किसे कहते हैं और विनय किसका देश होता है को सममना है। अन किर तो, वह कृतज्ञता के हाम है पानस्थान कर प्रमाशी होता पहुँचे, ऐसा मुळ भी करेंगा ही हाँ है है है की सम्बद्धन ध्री जिन्द्यन देशों और नारशों वा स्थानक रहते होते हो सालस्या आदि व प्रति ता स्मार्थ भिक्तम्य



परिगाम में यह आत्मा मगुर क स्वरूप के विषय में तथा सवर्म के स्वरूप के विषय में भी मुनिश्चित् मित वाली हो जाए।

ऐसे तो कम, परन्तु आप किसमे ?

का उपायना मेवा और बाचरण जितने अधिक परिणाम में अपने में शक्य दा उतने अधिक परिणाम में उपासना, सेवा और बाचरण करने के लिये उत्साहित बनती रहती हैं। क्यों कि उन्हें ऐसा लगता मैं कि 'दस समार में उपासना सेवा और बाचरण तो एक भाश गृदेव-मुगुर-मुबमं ती ही करने योग्य है-क्योंकि ससार के जीव मात्र के लिय परम कत्याण का परम कारण तो यही एक है।'

राग हं प से तो बहुत याद रखते हो :

ऐसा भाव आगा हदम में पैदा होने तमा है या नहीं ? ऐसा भाव आगर्क हदम में पैदा होने तमा हो तो वह मुविशुद्ध बने, रह तने लोग उसे जान पेता पैदा रामें लिए तथा ऐसा भाव भाग है। उसे में अभी तम भी पैदा म हाने पाया हो, तो ऐसा भाव निष्य हुए में पैदा हा उसे लिए यह वात है। आग मुद्ध भी याद स्थी ही गहीं। ऐसा सह राम लिए यह साम हिना अग्रेग हो। ऐसा सह साम हिना आव स्था है। इसमा तथा आग्रेग किए यह साम है। इसमा तथा आग्रेग है। इसमा तथा भी राम आग्रेग है। इसमा तथा भी राम पाद स्थी है। इसमा तथा भी राम पाद स्थी है। इसमा के अग्रेग निष्य अग्रेग है। इसमा के अग्रेग निष्य अग्रेग है। इसमा के अग्रेग हो। इसमा है। इसम है। इसमा है

इसका कारण तथा? हम इस बात को स्वीकार करते है कि ऐसी स्नातमाये अनन्त हो गई है परन्तु इन अनन्तों के नाम ठाम स्नादि को ज्ञान टीकाकार महींग को भी नहो। स्नन्तों के नाम ठाम स्नादि वा ज्ञान किम मे मम्भव हो सकता है। स्नन्त ज्ञानों में ही । जो अनन्त ज्ञानी नहों, उसे कभी भी स्नन्त के व्यक्तिगत नाम-ठाम स्नादि का ज्ञान होगा हो नहीं। हम जानते हैं कि टीकाकार महींग अनन्त ज्ञानी बने हुए न थे, अन प्रथम एलोक में प्रयुक्त पन्द्रहों विशेषण जिन पर उचिन हम में नामू होते हैं—ऐसी आत्माएँ स्नन्त हो चुकी होंग एर भी, उन प्रत्येक के नामादि का पना टीकाकार महींग को भी नहींना स्वाभावित्त है, परन्तु अमुक प्रमुक श्री जिनेश्वर देवों के नामों वा उन्हें पना होगा। सन्य क्षेत्रों में हो चुके स्थवा तो वर्ते मान में विहरमान भगवान श्री जिनेश्वर देवों के नामों की बाते तो हम रन्त को हम भरत क्षेत्र में गन उत्मिंग्गी काल में हो चुके पी विनेश्वर देवों के नामों की बाते तो हम रन्त को भी हम भरत क्षेत्र में गन उत्मिंग्गी काल में हो चुके पी विनेश्वर देवों के नामों हो चुके पी विनेश्वर देवों के नामों हो चुके पी विनेश्वर देवों के नाम सुनने है। गत



तेरहवे श्री विमलनाथ भगवान,
चीदहवें ,, श्रनत्त नाथ भगवान,
पद्रहवें ,, धर्मनाथ भगवान,
सोलहवें ,, धर्मनाथ भगवान,
सबहवें ,, कु थुनाथ भगवान,
श्रठारहवें ,, श्ररनाथ भगवान
उन्नीमवें ,, मित्तनाथ भगवान,
धोमवें ,, मृतिसुद्रत म्लामी भगवान,
प्रकामवें ,, निमनाथ भगवान,
वार्षमां , नेमिनाथ भगवान,

इस प्राप्त नेईम गाँवैपित भगवान हो जाने के प्रज्ञात् सीवीत स्च नार्वे पंत्र भगवान भी वर्षमान रुगमी ती हुए हैं, फिर भी प्रथम गे वर्ष रुग प्राप्त भगवान प्रादि किमी ते भी नाम का उच्चात् स्वत्त रुप के पाम क्लोबीति भगवान श्री वर्षमान रुगमीजी के उत्तर रुप का ग्रम्स दीरायार महित् ने किमा है तो इसकी किसा रुप रुप स्वत् हैं।

प्रति श्री यर्पेमाल स्वामी सम्भाग मौदीमधे लीर्थयति है। प्रत्यु निकार ने प्रणासी सम्भाग नो ये ही हैं दुर्भावये इनके शाम के प्रदेशकार की कार स्थाप्ता ने किया है, हैं, से सो साम सकते जाते

भी श्री महावीर ग्रादि नाम से पहिचाने जाते है ग्रीर ग्रधिक प्रचितत भी यही नाम है। यद्यपि शास्त्रों में ग्रनेक स्थलों पर चौवीसवे तीर्थ पित भगवान की श्री वर्धमान स्वामी जी के नाम से भी स्तुति की गई है जैने कि लोगस्म में भी 'वद्धमाग्यस्स' पद आता है, फिर भी मुत्रादि में ग्रनेक स्थलों पर 'श्री महावीर' नाम का ही प्रयोग किया गया है। श्री कल्पमूत्र जैमें में भी 'ममग्रों भगव महावीरे' इत्यदि प्रयोग देग्नने को मिलते है। इस प्रकार, वर्तमान काल की चौवीमी के चौवीगय तीर्थ द्वर का श्री 'महावीर के नाम ग्रतिशय प्रसिद्ध ग्रीर स्ववहार प्रचलित होने पर भी, टीकाकार महर्षि ने, इन तारक का नामोन्तारण करने में, श्रीवर्धमान नाम को पसद किया है, इसमें भी नाई विदिधा ग्राणय रहा हो—यह सभव है।

श्री वधंमान नाम की स्यापना :

रण प्रवमित्तिमी के प्रोबीसवें तीर्थपति भगवान का, श्री वर्ष-भग राम उन श्री प निता श्री निद्धार्य राजा ने स्थापित किया थी। बद्धी राज्या श्री महायीर नाम उन्द्र ने स्थापित विया था। इन स्थान सा ी स्वापना में पीछ भिन्त-भिन्त हॉट्ट बिन्दु थे।

सत्तरत हा श्री उर्दमान नाम रसने का सराप नो इन तारक भगा हा को की जिल्हा साना के उदर में मर्भ क्य में री हुई श्री तर्दी जिल्ला औं सता था। जो बहता ही रहे, उसे वर्धमान कहते है। उस समय प्रत्यक्ष रूप से वर्धमान तो भगवान के माता-पिता थे, क्योंकि विविध वैभवों मे वे ही वृद्धि को प्राप्त कर रहे थे, परन्तु वे श्रपनी इस वृद्धि को श्रपनी वृद्धि नहीं समभते थे, परन्तु ऐसा समभते थे कि यह सारी वृद्धि गर्भरथ श्रारमा के पुण्योदय के कारण ही है श्रीर इस प्रकार गह गारी वृद्धि वस्तुत. तो इस गर्भन्थ ग्रारमा की स्वय की है। उनकी ऐसी मान्यता थी, इमीलिये उन्होंने इस गर्भस्थ पुत्र का ज्ञा जन्म ही नय इनका 'वर्षमान' ऐसा गुण निष्यन्न नाम स्थापित करने का निर्माय किया।

यथा नाम तथा गुगा हो। स्रथवा यथा गुगा तथा नाम हो, जी तेमे नाम की गुगा निष्यन्त नाम कहते है।

भगवान की आदमा देव ती हु में में च्यवन कर आपाह शुन्ती राठ के दिन देवानका के उदर में अवतरित हुई थी। उस दिन में रावानक, टीन नो माट मौर गाँठ सात दिन बीतने पर, अवित् भी माट की पुन्ता क्योदकी को सक्य राश्चिक समय यह प्रात्मा श्रीमती वित्र र माता के उदर में से बातर आई अवित् इसमें जन्म किंद इसके प्रचार के बारट में दिन श्रवीं मान्ताची गणना के अनुवार किंदन अवकार की स्वारत्य महाना के सनुमार तींक कुल्ला देवतीं की देन अवकार की स्वारत्य महाना मनाया गया।



है। इन्द्र विवेक शील है तो भगवान के माता पिता भी विवेक शूर्य नहीं है। दोनो ही विवेक गुगा से सपन्न होने पर भी एक की हिंद गुगा की ग्रोर है ग्रोर दूसरे की हिंद्र पुण्य प्रकर्ष की ग्रोर है, इसका का गा क्या? मुख्य कारण तो यही है कि इन्द्र को भगवान के गुगों के गम्यन्य में जैसा जान है वेसा ज्ञान भगवान के माता पिता की नहीं है। इन्द्र श्रवधी ज्ञानी है, ग्रत भगवान ग्रपने जीवन में भयंकर में मयकर उपमर्गों के समय भी कैंसे श्रवल श्रीर क्षमाणील रहते याने हैं। यह जान गकते हीं देख सकते हैं, जब कि भगवान के माता पिता के हिता को ऐगा ज्ञान नहीं है। साथ ही भगवान के माता पिता के सुरम में मुन्य हम में स्नेह राग का वल है, जब कि इन्द्र की सेवा तो पुण राग विषयक है। उमलिये भगवान के माता पिता भगवान गा 'यंमान' नाम स्थापन करते हीं। यह भी स्वाभाविक है श्रीर न्या माता या महायोर नाम स्थापन करी-यह भी स्वाभाविक है।

भगवान के धैर्य और वीरतों की इन्द्र द्वारा की हुई प्रश्नंसी [‡] पान यान की नो में प्रमण को नेकर मगवान का बी^र नाम रणदे की कात मुनने में ब्रानी है न ?

पैदा होना भिन्न वात है। ईर्ष्या ग्रत्यन्त कर मनोभावो की सूचिका है। व्यक्ति को इतनी योग्यता तो अवश्य पैदा करनी चाहिये कि चाहे जैसे भी प्रथमा सुनकर हृदय में कभी भी ईप्या भाव प्रकट न होने दे किसी भी अच्छाई आपके हृदय में ईर्ष्या भाव पैदान करे ऐसी भापकी म्यित है क्या ? किसी का भी अच्छा होता हो, भला होता ही नो उसमे ग्राप नाराज तो नही होते न । चतुर्विध श्री सघ मे गण्यमान्य कई व्यक्तियों में भी आज ईर्ष्या का दोप बढ गया है ऐसा श्राप महसूस करते हैं क्या ? समाज में, दूसरों को श्रच्छे बनाने की मार्थभाठी प्रविक चल रही है या जिसका प्रच्छा चल रहा हो, उसका बुरा करने की कार्यवाही अधिक चल रही है ? ईप्यीबीन बना हुआ फ्ट भी बोलना है, मिथ्या कतक भी लगता है, जो बस्तुये हो उनका गभाग दनाने और जो न हो उन्हें बताने का भी प्रयत्न करता है धीर जटा गरामर मिला कि किसी के कान भरने वा कार्य भी करता है ऐसा २ ४ रने बादे रिवर्त २ कुर मनोभावो मे ब्रानस्य मनाते हैं। र्देशांचा वे स्वीन यन हुए, दूसरी का विगाउ कर सकेंगे या नहीं पर शे किनिस्मा है परन्तु वे अपना स्वयं का तो अवश्य विगाड न र है। दनके का दिगाउँ करने में नो, इसके यत विगाउँ ऐसा परका परभव महाग्रम होता बाहिये, जब कि ईप्योतु का विगड़ने रे तार हार हर हा पायर मारापा बन ही चुना है। बह ईप्सी रु क रत्र पुरुष करणाहर स्थाप देव हैं।

टीकाकार महर्षि के हृदय का वर्धमान भाव:

टीकाकार महर्षि स्राचार्य भगवन श्रीमद् स्रभयदेव सूरीश्वरजी महाराज ने पन्द्रह विद्ययमो द्वारा सर्व सामान्य श्री जिनस्तु त करने के पश्नान् दूसरे श्लोक के प्रारम्भ मे, इस अवसर्पिणो काल में इस श्री भरत क्षेत्र में हो चुके चौबीस तीर्यद्वार भगवानी में से चौबीसवे नीर्वपुर भगव न को उनके नाम का उच्चारण करके नमस्कार िरार्ति। इस सबय मे हम अब तक कई बाने कर आये है। उनमे यान यर वा वि श्री महाबीर नाम विजेष लोक प्रचलित ग्रार इन्द्र-र गणित रोने पर भी दीकाकार महावि ने 'श्री वर्धमान' नाम का परना गरीं किया? उस नवा में हम देग आवे है कि श्री वर्ध-रान' नाम रिन परिस्थितिया में स्थापित किया गया था। यहां भी एसा लगा है हि होतानार महीप के हदय में वर्धमान भाव रहा प्या है और दाति एए इन महापूरप न 'नत्वा श्री महावीसाव' नहीं जिन्दे मन्त्रा श्री वर्षमानाय निसा है। टीक्नाकार महर्षि की ती धभी राधे बदसा है से दे से प्रसम्भावी टीका की जनसा करनी े एक बकी ए अवहि सीनरे प्रस्ति बार नीवे अस सूत्र उन र भरत्य रीट्रायर ही स्वता ता है। इस पाचव प्रेग स्व र १९८९ । रहा ता इस्सी समरी दीना जनना है। इस नीसरी ात 💰 🥫 १९ और १९ ६ मेरिया स्वनार्यं प्रक्रेन जी नवसी धारासा

कान मे यदि बुरे शब्द पड़े, तो अच्छे शकुन का फल रह जाता है और श्रीर लराव शब्द का फल प्राप्त हो जाता है। श्राप किसी कार्य से जा रहे हो श्रीर उम समय श्रापके कानो मे ए से भावार्य के शब्द गिरे कि 'तेरा काम मिद्र होगा' अथवा 'तू सफल होगा' तो ए से शब्द ए में भावी के मूचक गिने जाते है कि श्राप जिस काम पर जा रहे है, उन काम मे श्राप अवश्य सफल होगे। किसी भी कार्य पर जाने की जान हो श्रीर श्राप कहे कि यह कार्य मुक्त से नहीं होगा तो ?' तो गर श्राप को निव्फलता की मूचक गिनी जायेगी। इस प्रकार श्री वा भी वहा गहत्य है।

उस हिन्द में मोचे तो हमें एसी करपना करने का मन हो हो जाता है कि दीकारार महिंद के हृदय में जो वर्धमान भाव रहा हुआ था, यह समात होने वाला होने में, वैसे ही नाम से भगवान को समस्यार बरने का जनका मन हुआ।

धार शनिशय:

मा 'न'वा श्री मर्थमानाम' उनमं वसमान के पहिले जो 'श्री' शहर एक तथा है। यह 'श्री' शहर कित करती है। यह 'श्री' शहर कित करता है। यह 'श्री' शहर करता है। यह 'श्री' शहर करता है। या है। या है। या श्री करतान श्री वर्षमान करती है। या श्री करतान श्री करतान श्री करतान श्री करतान श्री करतान हो ने करतान हो ने करतान हो ने करतान हो ने करतान हो स्वार हो गाया है। इस अतान हो करतान हो ने करतान हो स्वार करतान है। वस अतान ह



गर्भ मे त्राते है, तभी से देवेन्द्रादि से पूजित होने लग जाते है, परन्तु भगवान पूजिन ही होते रहे-ए से प्रकार का पूजातिशय तो उनके केवल ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही तुरन्त प्रकट होता है।

> मधितम बोटि के चारित्रय बिना सर्वोत्तम कोटि का शान प्रकट ही नहीं होता :

द्वेप को क्षीरण कर डालने की इच्छा रखता है, श्रौर राग-द्वेप को क्षीरण करने का अमीध साधन चारित्र्य है। इससे, जो आज ज्ञान के नाम पर चारित्रचारों की श्रवहेलना करने में हित देखते हैं, अथवा तो अपने ज्ञान को रुचि के नाम पर जो अपनो चारित्रवणोलता के समाय का वचाव करते, वे वस्तुत ज्ञान के उपासक है या नहीं उनका विचार वे स्वय ही करे।

श्री मापतुष मुनिवर:

त्या ग्राम 'मापतुप' नाम से ज्ञान मृनिवर के प्रसम से परिचित है। उनके ज्ञानावरणी कमं का उदय एसा प्रवल हो रहा था कि जिसमें महामृनि लाख प्रयत्न करने पर भी 'मा कप' ग्रोर 'मां तुप' उनका भी भाष ठीत प्रभार से कण्डम्य कर उसे याद रखने में ग्रसमयं थे। ज्ञानावरणीय नमं के ऐसे प्रयत्न उदय होने वाले भी इन महा-मृनि ते, प्रभने पृत्यायं ने तल पर अपने मात्र ज्ञानावरणीय कमं को हो यह । भद जाना ज्ञाना ही नहीं परन्तु अपने नारो पाति कमों को ग्राम्व मृत से ही भेद द्वारा ग्रीर केवल ज्ञान उपाजित किया।

बडी उम्र में बीशिन :

हैप को क्षीरण कर डालने की इच्छा रखता है, और राग-हेप को क्षीरण करने का अमोध साधन चारित्र्य है। इससे, जो आज ज्ञान के नाम पर चारित्रचारों की अवहेलना करने में हित देखते हैं, अथवा तो अपने ज्ञान की रुचि के नाम पर जो अपनो चारित्र्यशोलता के अभाव का बचाव करते, वे वस्तुत ज्ञान के उपासक है या नहीं इमगा विचार वे स्वय ही करे।

थो मापतुप मुनिवर:

नया श्राप 'मापतुप' नाम से ज्ञात मुनिवर के प्रसग से परिनित
हैं। उनते ज्ञानावरणी वर्ष का उदय ए सा प्रवल हो रहा था कि
जिसम महामुनि नाम प्रवल करने पर भी 'मा रुप' और 'माँ तुप'
इत्ता भी श्राप टीक प्रकार से कण्डम्ब कर उसे याद रुनने में श्रममर्थ
भे । शानावरणीय वर्ष के एसे प्रवल उदय होने वाले भी उन महामुनि स, श्राने पुरपाचे के बत पर श्रपने मात्र ज्ञानावरणीय कर्ष री
हिंग मूत्र भेद द्वारा द्वाना ही नहीं परस्तु श्रवने नारों घानि कर्मा को
भिष्त मूत्र भेद द्वारा द्वाना ही नहीं परस्तु श्रवने नारों घानि कर्मा को

क्यो उस में बीतिन :

भाचरण करने हेतु है ? सच्चा ज्ञानी कीन मा ? जो सच्चे को सच्चा भीर भूठे को भूठा समभे, वही सच्चा ज्ञानी हो-एसा नहीं, सच्चा गानी तो वही कि जो जितना जाने उसे यथार्थ रूप मे जाने ग्रीर इम ज्ञान का उपयोग कर भूठे को छोड़ने के लिए तथा सच्चे को स्वीकार ररने के लिए उद्यमशील बने। यह 'त्याज्य' है ग्रीर उसे मैं कैसे छीउ नहूँ प्रीर जो ग्रानरण करने योग्य है उसका में कैसे ग्रानरण कर मप्र -ए मा विचार करके, इस विचार को कार्यान्वित करने का प्रयत्न न गरे तो ए मा व्यक्ति चाहे जितना पढ़ा तिखा हो ग्रीर चाहे जितना जानकार हो. परन्तु यह वस्तुत ज्ञानी नही। सम्यग्ज्ञान, सम्यगाचार में पर्तन करने की भावना की पैदा किये विना रह नहीं सकता ! मा शान मात्र जानने के लिए ही नहीं, परन्तु श्राचरमा गरने लिए रे। इस इंग्टिं से यदि ग्राप मुनने हो, तो उस ग्रहीर पुत्र की मद्गुर रा गुपोग पनित हमा इन बान को मुनने के माथ ही आपकी भगता रिचार प्राना नारिये । प्रापका जनना नाहिये कि - उसे सहपुर गा गुरोट जैंगा मिता बेंगा ही फलिन हुमा जब कि मुक्ते मब ती भी गरहर या मुनोग जैना फरितन होना चाहिये था, बैसा फलित नी र् दिना रे कोर ऐसा समना अवित् प्रय तक सद्गुर का मुगाँग विवर घर में परिवर हमाही उनने मण में मर्गुष्ट का मुने य राजा कर र जार महार स्वा में दूर में दूर में दोना चीरिय तदा २१ दार जाकि हुएन में राज्यम का सूर्याय कवा की प्रश्ति के किया रियम र मार्थ का विकास की मैदा करते वार्य - A2 4 1 A . .

भार ग्रपने ग्राचरण मे उतारने के लिए कथा सुननी होती है। ग्रापको पता तो है न कि ज्ञान मात्र जानने के लिए ही नहीं, परन्तु



बड़े अर्थी होते हे क्यों कि निर्जरा का परम कारण भगवान ने तप को ही बताया है। मुनि जीवन में तप का स्थान नित्य का है, परन्तु नैमित्तिक नहीं। उमीलिये मुनिगरण आहार का उपयोग करते हुए भी जपवासों गिने जाते है। आहार अहरण किये बिना तप करने को स्थित रहेगी नहीं —ऐमा लगने पर मुनिजम निर्देष आहार को अहरण करते हैं। उम प्रकार आहार लेते हुए मुनि जहाँ तप करते योग्य स्थित लगती है, वहा तप किये बिना रहते नहीं। फिर वारह प्रकार के नपों की अपेक्षा में बिचार करें तो मुनियों का जीवन तप में रितन हो, ऐमा हो नहीं सकता । मुनि होते हुए भी जो तप से उनता जाए, नप में भागे, उसमें मुक्ति भी भागती है। कवाचित उनता मृनि जीवन रमणीय बना रहने के बदले, रौद्रस्वरूप को धाराण राने वाला बन जाता है। यत मुनियों का लक्ष्य सदा तप वी अरेर होना ही है।

में गे गद फण्टस्थ करने के लिये दिये ?

याद हो तो पढ़े -ऐसे तो ग्रव भी मिलते है परन्तु चाहे जितनो वार रटने पर भी याद न हा ग्रीर फिर भी जानोपार्जन के प्रयत्न को छोड़े नही-ऐसे तो विरले हो होते हैं। थोड़ा सा परिश्रम किया ग्रीर याद न हुग्रा कि उकता जाए ग्रीर पढ़ना छोड़ दे-ऐसा वर्ग ही बड़ा होता है। इस प्रकार भी जानोपार्जन के प्रयत्न से दूर भाग जाने यानों के लिये, यह एक मुन्दर गजव की प्रेरणा देने बाता ग्रादर्ग है।

अनन्त ज्ञानी वनें :

दन महामृति ने इस प्रकार बारह-बारह वर्षो तक प्रयति विया। इस प्रयत्न के परिमामस्वरूप, ये महामित क्षपक श्रेणी पर घास्ट होकर इन महामृति ने अन्तर्मुंहते मात्र में नारो धारि य मों वा धार कर उन्ना और इस प्रकार ये महामृति पहते श्री वीरास बने धोर नुरस्त ही अनस्त जानी भो बन गए। 'सा का, मा तृष' इनने पदो ना जान तो पधा ? परस्तू इन महामृति उस में जिएने भी जीव धाजीयादि पदार्थ है उनका और उनके राजी पर्णाय का भी सर्वकालीन जान हा स्वा। ऐसे महामृतिसी की दो दस कराइ-२ वार नमस्कार करें। सम्यक्तान और सम्यक्त नार्थिन को दानो महास्ति के जीवन से मिल रही है।

एक्स बेर में होते हुए भी

गुरम्य माव में नहीं :



था। वहाँ छोटे भाई समफकर तो वदन करना न था, परन्तु केवल ज्ञान को लक्ष्य मे रखकर वन्दन करना था। छोटा भी पहिले दीक्षित हुग्रा हो ग्रोर केवल ज्ञान प्राप्त कर चुका हो तो गुगाधिक्य के कारण वन्दनीय ममफा जाता है।

इस बात को श्री बाह्य निजी समभते ही न थे क्या ? श्री बाह्य निजी भी महान विवेकी थे। श्री, बाहुय निजी यदि महान विवेकी न होते तो उन्होंने जिन सयोगों में श्रपनी मुध्ठि से अपने मस्तक के वालों को उपाउ कर समार का त्याग किया, उन सयोगों में ऐसा लोच करने श्रीर समार का त्याग करके भगवती दीक्षा ग्रहण करने पा विचार भी नहीं ग्राता। इन्हें तो जैसा ही विचार श्राया वैमा ही निगंग करने उसे कार्यान्यित भी कर दिया।

प्रश्मे भी एक बान तो थी ही कि 'मसार का त्याग तो कर दें परन्तु भरत की अधीनता तो हिंगज स्वीकार मही कर गा। गाई त्या दिया तब स्थिति भिन्न थी। महाराजा श्री भरत को गार के किए ही उन्होंने मुण्डि उठाई थी, परन्तु मुण्डि उठाई और उन्हों किए यापा कि उन्हों परिगाम नया। महान अनर्थ ! बड काई है हु हु मेरे ही हाथा। 'बम उसी समय बैराय अबल हुना के दें के कि मानवात को मारने थे लिए उठायी हुई मुण्डि मेही की को किए किए किए की मारत मही के की का करने के किए के किए अधी मरत मही के की किए के किए की की मरत मही के की किए के किए की मरत मही की की की का करने के किए के किए के किए की मरत मही की की किए के किए की किए के किए की की किए किए की किए कि

भागती फिरती है। ग्रत विवेकशील ग्रात्माग्रो को तो, सदा के लिए नमस्करगीय पूज्यो को शुद्ध ग्राशय से शुद्ध भावपूर्वक नमस्कार करने मे हो गुरुता माननी चाहिये।

श्री सुधर्माजी को नमस्कार:

टीकाकार श्राचार्य भगवन ने जैसे भगवान श्री वर्धमान स्वा-मीजो को नमस्कार किया है, वैसे ही उसके वाद तुरत ही पाचवे गणगर भगवान श्री मुद्यमांस्वामी जी को भी नमस्कार किया है। प्रथम गणघर भगवान तो श्री गौतम स्वामी जी महाराज हुए है, किर भी यहा श्री मुनमां स्वामी जी का नाम लेकर नमस्कार किया गया है. इसमे विजिष्ट हेनु रहा है। जिस श्रा गूत्र की टीका की रचना करने के जिए टीकाकार महींप प्रवृत्त हुए है, उस श्रंग मूत्र के ग्रथिता गणधर भगवान श्री मुत्रमांस्वामीजी हैं।

मगतान श्री वर्धमान स्वामीजी ने तो अर्थ से द्वादणांगी कही।
पर तु उस अर्थ की मुताकार में किसने मूंथा ? गराधर भगवानी ते।
देश प्रारण में यह वर्णन कर नु है है कि भगवान श्री अर्धमान स्वामी
हैं। भागत में पूत क्यारह द्वादणांगियों की रचना हुई श्री वर्थीं।
क्या को स्थारह मगावर्ण की स्थापना की श्री की उन प्रदेश
क्या का मालाने अपनी ने द्वादणांगी की श्री। इन क्यारह द्वादे
के अपने के का प्राप्त क्याय का भगवान श्री मुखमी हमामीजी
देश करते हैं।

भी कि संस्थित कराई सम्माना ने सम्पत्नों को स्थापना करी के स्थापना कराई है। इस्टेंग सम्बद्ध हैं है स्टेंग सम्बद्ध हैं हैं क्या के स्टेंग के स्टेंग के स्टेंग सम्बद्ध सम्बद्ध स्थापना

वतीजी सूत्र रूपी पाचवे ग्रग सूत्र का गूथन करने वाले पाँचवे गण्ध घर भगवान श्री सुधर्मा स्वामी जी को नमस्कार किया है।

इसमे अवज्ञा नही :

इस प्रकार नमस्कार करने मे श्री गीतम स्वामी जी श्रादि की अवजा होती हो ऐमा कुछ नहीं है। जैसे भगवान श्री वर्धमान स्वामी जो को नगरकार किया -इसमे भगवान श्री ऋषभ देव स्वामीजी स्रादि भगवानो की स्रवज्ञा हुई हो-ऐसे नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार श्री सुवर्मा स्वामी जी को नमस्कार किया-इससे श्री गीतम म्वामी जी ग्रादि की प्रवज्ञा हुई हो-ऐमा भी नहीं कह सकते, क्योंकि भगवान श्री ऋषभ देव स्वामा जी आदि को नमस्कार न करना-या तो गगायर भगवान श्री गीतम स्वामा जी अवि को नमस्कार न रना-ऐसा भो टीकाकार महिंप के हृदय मे नहीं था ग्रीर भग-गान थी वर्धमान स्वामा जो को नमस्वार करके उनकी अपेक्षा भग वान थीं तहाभ देव स्वामी जी स्नादि की या तो ग्राम्बर भगवान टा गुवमां स्वामी जी को नमस्कार करके गराधर भगवान श्री र्यो स र अमी भी खादि की हीन बनाना-ऐसा भी टोबाकार महीं। के त्रियं म स सा । जिन गुणों स मभी ममान हार में मम्पना ही उन्हीं हैं। दिसमा करों समुत्र विजय ही थे, प्रथवा 'समुत्र ही निजय व तिया पर कार तेव ता बहना पटे कि अवशा है। इसमें भी न है। विभावनी हो, परन्यु इसमें एक ही प्रणना के नाम पर ्र प्रकार-नेता रहना परमा, परन्तु इसमे तो ऐसा हु भारत है। विश्व प्रति प्रशास पारत का जिसके स्थान र १ कर राज्य है के समय हो त्या के तेशक उन्हें -र यगा स्था 1 - 4 - 1 - 1 - 1 - 1 - 2 - 3 - 3

सामथ्य तो गण्वर भगवान का ही गिना जाएगा न ? इसी त्रिपदी को अन्य कोई स्वय भगवान के श्री मुख से सुने, तो भी उसके श्रवण योग से गण्धर भगवानों की आत्माओं को जैसा बोध होता है, वैसी वोध किसी को ही नहीं और दूसरा कोई इतना सुनकर द्वादणांगी की रचना भी न कर सकता। ए सी शक्ति तो, गण्धर भगवानों की आत्माओं के लिये ही आरक्षित रही है और रहेगी।

पूर्वकालीन सर्व महापुरुषो को

नमस्कार:

टीका गार महर्षि, भगवान श्री वर्षमान स्वामी जी की ग्रीर गगावर भगवान श्री मुवर्मा स्वामी जी को नमस्कार करके मगला तरमा में कह गये हो एसा भी नहीं। टीकाकार महर्षि ने तो 'सर्वा' तुमोगव्दे न्य 'ऐमा वताकर, प्रपने से पूर्व हुए सभी महापुरुषी की भा नमस्याय किया है। कारमा ? ग्रंग सूत्र ग्रादि ग्रपने तक पढ़ते, टनमें उन मभी महापुरुषा का भी योग है फ्रांर वह भी माधारण राशार नरी। भगवान ने द्वादशामी अर्थ में कही और गणवर देवी रे इत्सारी या मूप रूप में गूथन किया, परन्तु उसे यथानार रशीत में रुप रर, मुर्यात रुपत्र , सम्हाल कर महापुरुषों ने जिनती हा ४० दलने भाषा में ग्रस्तिन्य में रखी न होती, तो हमें उपमें म उन्ह मा रेस भित्र सराती थी। इसीतिये इन महापुनयों का भी उन देश है देश है है से प्रधार नमस्थार एक्से में गुग्तवानी का गीरव र के ति ति इंटर में शामुणा द्वारा किया गया उपकार लक्ष्य में ें किया का कार बाम मा मार्ग है और हैं विकास का का निर्माण का निर्माण की माना की माना की माना की राज्य के विकास कर किया है जिस्सी है के बार के के बार के किया है जिस्सी भेगा के प्रकार कार्य के साम्यक सम्मान करें े के कि कि मार्थ महार्थीन प्रमाणमा के निकीत

सामध्य तो गएावर भगवान का ही गिना जाएगा न ? इसी त्रिपती को अन्य कोई स्वय भगवान के श्री मुख से सुने, तो भी उसके श्रवण योग से गएाधर भगवानों की आत्माओं को जैसा बोध होता है, वैंगा वोध किसी को ही नहीं और दूसरा कोई इतना सुनकर द्वादशागी की रचना भी न कर सकता। ऐसी शक्ति तो, गएाधर भगवानी की आत्माओं के लिये ही आरक्षित रही है और रहेगी।

पूर्वकालीन सर्व महापुरुषों को

नमस्कार:

टी गाकार महर्षि, भगवान श्री वर्षमान स्वामी जी को ग्री गगधर भगतान श्री मुधर्मा स्वामी जी को नमस्कार करके भगता चरण में का गये हो ए सा भी नहीं। टीकाकार महर्षि ने तो सर्बा नुमोगवृहोस्य 'गोसा बताकर, प्रपने से पूर्व हुए सभी महापुरुषो ही भी नमरनार किया है। कारम् ? ग्राँग सूत्र ग्रादि ग्रपने तक पहुँके दर्गमं उन सभी महापुरुषा का भी योग है और वह भी साधारण प्रकार नहीं। भगवान ने हादणामी श्रयं में कही ग्रीर ग्रावर देगी र द्वारणींगी रा मूत्र रूप में गूथन तिया, परन्तु उसे यथाया रम्भि भे राव वर, मुर्गातत रामार , सम्हाल कर महापुरपो ने जिन्नी िं रा जाती गाता में ग्रान्तिया में रखी न होती, तो हमें इसमें है कि कि निक्त सकती थी। इसीनिये इन महापुरणी की भी उप रार है स्था में रे प्राप्त नमस्तार करने में गुगावानी का गीर के हैं कि इस इस इस्ट्राइट स्था क्या व्यक्त स्था कार है जिस्सार बनाया सामा है और है , रेक प्राप्त हर एर हे भी सम्भाषा जा माना है। यहाँ ही द न कर ने पुरसारा, कर विस्ते द्वारा साथा ती ? मनी ्रिक्त राज्य विकास द्वार । सम्बद्ध सम्पत्त भ



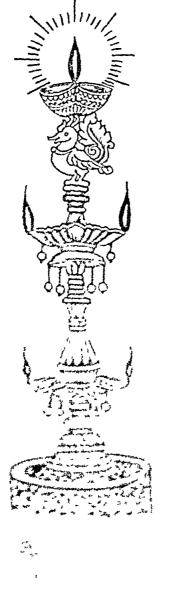
अराधक तिरता है— विराधक डूबता है:

यह वाएगी जब तक जिसके कान मे न आई, तब तक वह भव-भवर मे है, वहां तक वह जीव चीरासी के चक्कर मे है। यह वासी ऐसी है कि जीव में यदि योग्यता हो, नो जीव को होश में नाती है जीव होश में आए, तो उनके लिये वाग्गी सफल बाकी तो, भते ही का उसम्म करता हो, प्रतिकममा करता हो, स्तृति श्रादि करता हो. परन्यु यह सभी कान में ? यह बास्सी यदि योग्य पात्र की प्राप्त हो. तो जीत सुध में ग्राये विना रहे नहीं। जोवी का तमाम कल्याम न रने पार्वा जिन वागा है। हिसको को भवकर पार्विया को वागी ए।द रस्ता है। रिमी को मुवारना हो तब भी वागी जाम करती है। सिंद तपाद समा। भार गैनातामा भी बाली में दी दीवी है जर त्यार में वीज भी जागा। करवानी है। वीकागरी दूप-वापण असी सर्वत को नहीं होती । कीम को दर करते जानी नासी की बीउसए की है। भी अवसार में काली के समूहत रहते जा ग रिकार है और भी भेजार का सण्या में यांतर ता रहन पाला सम्ना है। रहार के बीय भर बारर तथा, जुस्सी बसायना समयना र रहाल सर्वित वाल विकास सहस्र सक्ता अविकासी कर राज्य का वास भू के वक्तरिकार व दिस्तिविधाओं जाति है प्रसार प्रधी रा । न ४१ र शे र राष्ट्री सरा र म सम्बद्धार विकास देवारि रेद्रम् १५ १ र र र ५५ १ हिस्स्या के स्थापना है । इस धी · "如子"·文文(10) 意思事物的 如意 对错误 CARROLLER AND BUT HER PRESENTATIONS BERTHUR BERTHER BERTHER BERTHER BERTHER

दो है कि यह टीका म स्वतन्त्रहप से रचने वाला नहीं हैं। टीकाकार महीप नहते हैं कि 'मैं आधार पू गा,' और आप किसका-२ आधार लेने वाले हैं, उसका निर्देष भी आपने कर दिया है। श्री जैन णासन की यह पद्धति है। आधार निल्बिना कोई बोनता ही नहीं। भग-पान श्रो जिनेश्वर देव तो, केवल ज्ञान होने के बाद ही धर्मतीर्थ की स्यापना करते हैं, अन. इन नारमाहारों को नो अन्य किमी के आधार की अपेजा रहती नहीं, परन्तु इनक अलावा जो कोई हों, उन्हें ती उत्पुत प्रवनादि में बचार सत्यवादि ही बना रहना हो नो योग्य का प्रापार तेना ही वाहिय । द्वादशाया को रचना करने याग्य सामर्थ्य रसने वरि गरावर भगवना ने भी पहिले भगवान के नचनी था लाधार जिसा सीर उम्बिल जो कुछ भी कहा है यह भगवान के नाम गरी वटा है। मनेज रचन की रितानी अधिक महिमा है। उसी नागत वा दरमा ५० मा गाउँ बनना है। बर स्वयं निरता है। जार इसमें राजी विमाने का आधार बनता है। भी स्वामी स्वामीजी र पट्टार वर हुए और जरहर राया के ने भा अत्यार जिल्ला था। उनके दार और महतूरता ने भी जा तर रिकाला।

कीमत तो तब कही, जब कि जिसका कहा हुआ कहा जाता हो, वह अमर्वज्ञ और मिथ्याभापी हो। जो श्री सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित है और जो श्री सर्वज्ञ भगवान के वचनों का अनुसरण कर कहा गया है, उसे कहने में तो कीमत ही है। इससे सिद्ध होता है कि कहने वाले को अपने ज्ञान की न्यूनता का मान है। ज्ञान की न्यूनता होने पर भी कई जैमा जानी होने का मिथ्याडवर करते हैं, वैमा मिथ्याडवर में करते नहीं तथा अपने अन्दर ज्ञान को न्यूनता होने में अज्ञानतावण भी मिथ्या यचन उत्पूत्र वचन बोलने में अपना या परामा हित गडित न हो जाए इमरी भी इन्होंने सावधानी रुगी है। ऐसे उत्तम गुण सम्पन्न जीव के लिए ऐसा कैमें कहा जाय कि ये दूसरों का क्यन करते हैं, जन इनके जयन नी कीमन क्या होते निम्न हो।

चोरी करके लेखक और कवि कहलाने का



शा रू त्र प्रस्तावना विभाग





दम बात का प्रस्तावना के वाचक को परिचय हो जाय। प्रस्तावना बानक के हृदय पर ऐसा असर हो कि मुक्ते यह ग्रन्थ सागोपाग पढ़ना और मनन करना चाहिये। जो प्रस्तावना गन्थ के महत्व को समकाती न हो, और गन्थ में विगत विषयों का परिचय देती न हो, वह प्रस्ता-बना वास्तव में प्रम्तावना ही नहीं ? प्रस्तावना पढ़ने वाले को पढ़ते समय ऐसा लगे कि प्रहा ! इतना अधिक सुन्दर और महत्व-पूर्ण यह ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में विगत पद्धित भी इतनी अधिक मुन्दर है ? और इस ग्रन्थ में दतने अधिक विगयों का वर्णन है ? इसका नाम प्रम्तावना। टीकाकार महींग तो महान विद्वान है, यत इन महापुरूप ने यहां जो प्रस्तावना निस्ति है वह ऐसी ही है।

शास्त्र प्रस्तावनाः

मरावा ररण और ग्रमिधेण कथन के पश्चात् उस गास्त्र यी इस्ता का वरते हुए टी हातार मर्शिष फरमाते है कि —



इस वात का प्रस्तावना के वाचक को परिचय हो जाय। प्रस्तावना वाचक के हृदय पर ऐसा ग्रसर हो कि मुभे यह ग्रन्थ सागोपाग पढ़ना और मनन करना चाहिये। जो प्रस्तावना ग्रन्थ के महत्व को समकाती न हो, और गन्थ मे विणित विषयों का परिचय देती न हो, वह प्रस्ता-वना वास्तव में प्रस्तावना ही नहीं ? प्रस्तावना पढ़ने वारों को पढ़ते समय ऐसा लगे कि ग्रहा। इतना ग्रधिक मुन्दर और महत्व-पूर्ण यह ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे विणित पद्धित भी इतनी ग्रधिक सुन्दर है ? और एम पन्य मे इतने ग्रिंगिक विषयों का वर्णन है ? इसा नाम प्रस्तावना। टीकाकार महींप तो महान विद्वान है, ग्रत इन परापुर्ण ने यहां जो प्रस्तावना निन्धी है वह ऐसी ही है।

गास्त्र प्रस्तावना :

मगतापरम् प्रोर प्रभिष्य कथन के पण्तात् इस णास्त्र पी प्रराजना परते दुए टीलाकार सर्वाप परमाते है कि —

कड़वी जहर जैसी है, तो इसमे जहर की उपमा ग्राई, परन्तु इस जपमा के साथ सम्बन्ध कितना ? कडुश्राहट तक ही सीमित। दवाई भी व दुई श्रीर जहर भी कडुग्रा इसीलिये यह उपमा। वाकी गुए-दोप में तो महान ग्रन्तर। दवाई रोगी को स्वस्थ वनाए जबकि जहर स्वस्थ को भी रोगी वनाकर मारे। यहां की उपमा ऐसी नहीं, परन्तु यह सूत्र एक हाथी के समान है, समुन्नत जयकु जर के समान है ऐसा कहा गया है। उसलिए सहज ही प्रण्न उठता है कि सम्बन जगरु जर के अमुक २ अ ग है, तो क्या ये सभी इस सूत्र मे हैं ? टीका यार महाप कहते है कि हा -ये सभी है। इसीलिय तो 'समुग्नत-जयकु जरम्येव ऐमा बताकर, जयकु जर मे जो-२ महत्व का होता है, यह मत्र इस पाँचव म्र गसूत्र में किस प्रकार घटित होता है यह बनाया है। यह बनाने के बाद टीकाकार महिष् ने, किस प्रकार वाजिता कप में दीना शुरू ती जाती है, यह भी कहा है।

जयकुंजर हो भी जय दिलवाने की प्रयत गक्ति इस सूत्र में हैं :



राजा बनकर उन्हे अपनी साधु जीवन जीने की भावना को जाने देनी नथी। यदि पिता की आज्ञा भी पालन हो ग्रीर साधु जीवन-यापन करने की अपनी भावना भी सफल हो, ये दोनों शक्य हो, तो पिता की ग्राज्ञा पालन करते। यदि अपनी साधु जीवन जीने की भावना निष्फल जाती हो तो उसके लिए श्री ग्रभयकुमार कदापि तैयार नथे। श्री ग्रभय कुमार ने श्री श्रेगिक को जो प्रतीक्षा करने की बान कही, वह इसी कारगा से कही थी।

श्रावक में सभी भावनाओं में प्रधान भावना साधु जीवन प्राप्त करने की होनी चाहिये:

श्री श्रमयकुमार वी यह मनोवृति समक्त मे श्रानी है। सुद्धाः वि मनोवृत्ति केमी हो, उसका श्री श्रमयकुमार के इस प्रमाणि सन्दर वर्णन है। त्यावण वी सबसे प्रवत्त यदि कोई भी भावता हो तो वह मानु जीवन जीने की हो। त्यावण माना पिना वी श्रामाणि जन्म हो बहा कर सन्दर दोना वाला नहीं हो। श्रावण जहां तक श्रम्य हो बहा कर सांचा तिला की श्रावण हो हो, श्रावण सांचा तिला हो स्थान सांचा तिला हो। श्रावण सांचा हो श्रावण सांचा हो हो। श्रावण सांचा हो श्रावण सांचा हो श्रावण सांचा हो। श्रावण सांचा हो श्रावण सांचा हो। श्रावण सांचा हो श्रावण सांचा हो। श्रावण हो। श्रावण सांचा हो। श्रावण हो। श्रा

भगवान को पूछकर ही 'पिता की आजा के खातिर भी राज्य लेती या नही ? 'इस सम्बन्ध में निर्णय करने का विचार रखा।

इससे, यह न समभे कि भगवान कहे तो राज्य तेना ए^{मी} श्री श्रभयकुमार का विचार था!

मगवान मला राज्य ग्रहण करने के लिए कहते होगे वया भगवान राज्य ग्रहण करने का कहे श्रथवा राज्य को भी छोड़ने बी बान वहे ? महाराजा श्री भरत जैसे भी समभते है कि 'राज्य सक्तरोबींजम' श्रथित् राज्य ससार हभीवृक्ष कम श्री मैं है और भगवान ऐसे राज्य को ग्रहण करने की वात कहें—विंग यह सभव है। भगवान को नान नो दूर रही, परन्तु माधु भी राज्य को ग्रहण करने वा की नहीं। समार की किसी भी त्रिया से साधु की श्रनुमति होगी ही नहीं। समार की विया से यदि कोई भी साधु भूत से भी श्रनुमति दे दे वी कहा सा ग्रहण को पाप से लिखन होना है।

ती फिर भी अभयगुमार तैसे सममदान, औल श्रदालु ने भी भन भी पढ़ रुप हो पिता की आजा के खातिर भी राज्य तेना भी मही भे देशका निर्मात करने का विचार रहार, हमेरा कारण करें

सुख का त्याग करने मे ही सच्चा सुख है। राज्य सुख सम्बर्ध इनकी यह मान्यता श्रापको प्रिय तो लगी न ?

मोह के बल के आगे धर्मराण का बल विजयी हुआ

महाराज श्री श्रे सिक ने जब देखा कि श्री ग्रभयकुमार राग को स्वीकार करने के लिये किसी प्रकार से सहमत होने वाले नहीं तव उन्होंने भी प्रपनी इच्छा को गीए। वनाकर श्री अभयकुमार में साधु जीवन जीने की इच्छा को प्रधान बना दी । महाराजधी श्री (एक ने श्री अभयकुमार को दीक्षा ग्रह्म करने की इजाजत हुए -पूर्व ह दी। महाराजा श्री श्रे िंग्यक का श्री ग्रभयकुमार के प्रति जैंग तैमा राग नहीं था । श्री श्रमयकुमार ने महाराजा श्री श्रीणक के व्यक्तिमत तथा राज्य सम्बन्धी कई कार्य तो ऐसे किये थे-जी मन तिमी में मी न हो मके श्रीर यदि वे कार्य हो नहीं, तो उससे महा राजा भी श्रीमान के मनोंदु स्व की सीमा भी न रहे—एसे बे कार्य ते। श्री समयर मार जैसे गजब के पितृभक्त थे, वैसे ही बुद्धिणातिकी त नी मिन्द्रिभार जस गजब के पितृभक्त थे, वस हा बुख्या रेना का कार्क थे। एसे पुत्र को दोशा लेने की स्नुमित महर्ष प्रदेश के जिल्हों में उसके से मोहें के वल के सामे धर्मराम का प्र क जिल्हों हो है। साह क बल क आग धमराय ... जिल्हा के माने की सकता है ने ? महाराजा है हिएक हैं अपना विता का कार्न हो मकता है न / महाराज्य कार्या कि का कार्न हम पालन करने में कमी नहीं करी है। सम्प्रमान में होता लोशों के दिन की निन्ता प्रान्ते की है। व मुक्तार हो हो। बारा बा जिल्ला प्राप्त के कि हुन्या भी भी रही के देश कर के ते हैं। के ती जा का देश देश मा देश हैं के ते के ति के मान क्यान में कारी बेलव हैं के कर्ल



भ्रष्ट बना डालता है ? स्वय पुत्र है और ये पिता हैं यह बात भी वह भूल जाता है। ससार में क्या सभव नहीं ? मानव का अणुभोदय जब प्रवल होता है, तब सगी पत्नी, सगा पुत्र, सगा भाई या सगा पिता भी भयकर से भयकर कोटि के शतु का कार्य सम्पादित कर वैठते है श्रीर इसमे श्राश्चयं की कोई बात नहीं। इस ससार में ऐसी और इसमें भी भयकर घटनायें सभावित है, परन्तु पुण्योदय के योग से प्राप्त प्रमुकूलताओं में तल्लीन बने हुए मधु बिन्दु जैसे ससार के मुखो को स्वरूप को पहिचान सकते नहीं श्रीर इसीलिए वे इन मुगा के पीछे पातम होकर फिरते हैं।

कुणिक का चेरमाय पूर्वभव से हो था:

प्रश्न कुरिएक का भ्रयने पिता के ब्रति वैरमाव होने का



रक न जाये इसके लिए कुिएक ने अपनी जाघ हिलने तक न दी।
पुत्र जब पेणाव कर नुका तो कुिएक पेणाव युक्त जितना अस था,
उसे अपने हाथ से अलग करके उसी थाल में वह पुन खाने लगा।
इस प्रकार भोजन करते करते वह अपने पुत्र प्रेम का मन ही मन
अनुमोदन करने लगा। इसे लगा कि मै अपने पुत्र पर कितना अधिक
अमीम प्रेम रखता ह। वह ऐसे विचार करता ही था, उसकी हिंद्द
अपने पास बैठी हुई अपनी माता चेल्ला देवी पर गिरी। अत पुत्र
प्रेम के हपविण में वह रहे उमने, अपनी माता से पूछा—'क्या माता
भूतकाल में मिसी को भी अपना पुत्र इतना अधिक प्रिय लगा होगा।
प्रया वर्तमान में भी कोई ऐसा होगा क्या जिमे अपना पुत्र भेरे
जिनना प्रिय हो।'

कितनों के पुत्र बने और कितनों को पुत्र बनायें ?

े ऐसे उत्तर को प्राप्त कर, जरा भी क्षुभित हुए विना कुणिक ने भगवान से पूछा-'में सातवे नरक मे क्यो नहीं जाऊँगा ?'

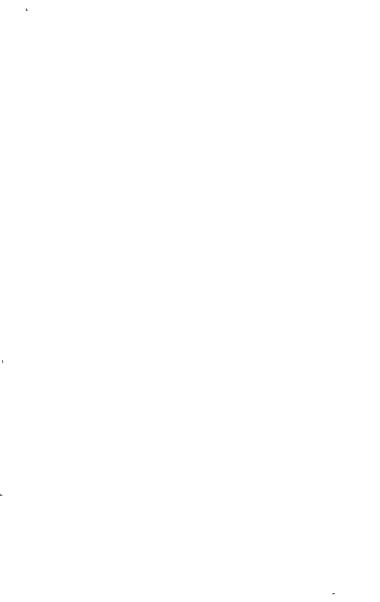
भगवान 'तू चक्रवर्ती नहीं है। जो चक्रवर्ती होता है उसके पान तो चक्रवर्ती के योग्य सामग्री होती है। जैसे जहा धर्मी होता हैं, वहां धर्म श्रवण्य होता है।

यहा यह वात भी तुम्हारे ध्यान में रखनी है कि भोगादिका जीवन पर्यन्त परिन्याग नहीं करने वाले चक्रवर्ती सातवे नरक में जाते हैं श्रीर इनके निवाय श्रम्य कोई जीव सातवे नरक में जाते हीं नेहीं। ऐसी वात नहीं है। श्रम्य जीव भी सातवें नरक में जाते हीं वाने वो हो गमते हैं। मनुष्य गिन श्रीर निर्यव गित में से भी श्रमी तो सातवें नरक के योग्य यायुष्य कर्म का उपार्जन कर सातवें नरक में भी जाते है। श्रम यहा भगवान ने जो सूचित किया है कि नश्र सी नहीं हैं श्रम व मानवें नरक में नहीं जाएगा वह इसी निए मिना किया कि मुंगा के हों हों। उसने का प्राचन के स्था परवर्ती हैं ऐसी उसरी जो सबैशा मिख्या मानवतें का ध्यान में स्था परवर्ती हैं ऐसी उसरी जो सबैशा मिख्या मानवतें का ध्यान में स्था परवर्ती हैं ऐसी उसरी जो सबैशा मिख्या मानवतें का ध्यान में स्था परवर्ती हैं ऐसी उसरी जो सबैशा मिख्या मानवतें का ध्यान में स्था परवर्ती हैं ऐसी उसरी जो सबैशा मिख्या मानवतां का ध्यान में स्थान ने दम प्रकार उत्तर दिया था।

रात्ति ने तान कराति ता पत्रवर्ती नहीं है तब पून कृष्णि । त हार के शहर विशेष नदी है मेर पास भी चन्नार्ती जैसी चार्ड

्व पार के ते हारत विचारित प्रणाव में से पाना और स्वर्ण दे के १८४ - हे के किया ने सेटी है। पियट करवा के दिसान आ १ १८९१ ६ - १७ ३१ के सम्बद्धि स्वीत है। बार करवा के दिसान आ

भागक व माहा देश विवाह स्थापक की जाता हिस्सा कर्णा उत्तर को भागिक के राज्य के एवं के सा प्राणा हिस्सा कर्णा



देवी ने कहा है न ? तेरा बुरा करने के लिए तो में सब कुछ कर चुकी हूँ और तेरे पिता ने तो तेरा सदा भला ही किया है-एसी वात कही न ? हृदय को पितभक्ति के बिना, एसी बात सच्ची होने पर भी, इस प्रकार और इन परिस्थितियों में कही जा सकती है क्या ? उमें एसा न नगा होगा कि णायद यह मेरे पित की भाति मुभै भी बची न बना डाले ? परन्तु इस बात की चेल्लाए। देवी को चिन्ता ही में थी। हमें नो यह मोचना है कि पित कारावास में हैं उसका चेल्लाए। देवी को कितना भी दुर्ग है ? इस पर न यह भी समफ में आ सकता है कि यदि उसका वस चलता तो वह एक क्षाए। के लिये भी श्री श्र गिक को नारागार में रहने न देती, परन्तु उस ममय कुरिए। का प्रभाव उतना प्रचित्र प्रवल होगा कि जिससे कोई भी व्यक्ति श्री श्रीएक की मुक्ति के लिये कुछ भी न कर सका।

कुणिक का हृदय परिवर्तन और श्री श्रीणिक का प्राण त्यागः

ने त्या देशी विचनों में बुग्गित के हृदम पर श्रमानार कि ए पा। भाने पिता के प्रति उसका होय दूर हो गया। तिश कि प्रति के राज्य के राज्य के त्या के प्रति उसका होय दूर हो गया। तिश कि कि राज्य के रा

इससे उसके दु ख की श्रविध न रही। उसके हृदय में इतना ग्रीधिक मलेश हुआ कि उसके निवारण हेतु मित्रयों ने पिडदान का कृत्रिम उपाय दू ढ निकाला। इससे उसे कुछ शाँती मिली। फिर भी जब व वह पिता की श्रय्या, पिता का आसन, आदि देखता, तब-२ उनके हृदय में शोक उत्पन्न हुए बिना रहता न था। इससे उमके लिये राजगृही में रहना भी श्रसह्य हो गया। श्रत उसने चम्पा नामक एर निवीन नगरी में हो कुिएक सपरिवार रहने लगा।

श्री हल्ल विहल्ल के पास से हा^{थी} आदि ले लेने का रानी पद्^{मावती} का कुणिक को क्षा^{ग्रह}ें

श्रव श्री हरन विहरन का प्रसम प्रांता है। यह प्रसम ही स्वभाव मुन्म ईर्या और विषयाधीन सुलभ स्वीत्व में से उत्पन्न है। यह प्रसम ही समाव सुन्म ईर्या और विषयाधीन सुलभ स्वीत्व में से उत्पन्न है। यापों याद तो होगा ही कि श्री प्रभमकुमार और श्रीमती नंदा है विश्वा तेने समय श्री हरन विहरत को दिव्य कु उनो की जोड़ी हैं। दिव्य पस्य पुग्म प्रांतिन विधे थे, और उसके बाव मुग्मिक को सम्बन्ध मीदन ली दे हरा में श्री श्रीमिक ने श्री हरन विहरत को से वर्ष राधी ने वा प्रहारह नयी गा राम श्रीन किए थे।

भाई करे, इससे वडे भाई के प्रति उन्हें गुस्सा ग्रा जाय । यह कि भी ग्रापको ग्रपने वृद्धजनो वन्धुजनो ग्रथवा पुत्रादि परिवार के प्रीरं ग्रीरं थागे वडकर कहें तो ग्रन्य किसी के प्रति भी दुर्भाव पैदा कि वाला न वने, इस वात का तो ग्रापको ध्यान रखना चाहिये। है विवास सावधानी वनी रहे ग्रीर भवसर ग्राने पर भी इसमे कमी माने व पार् इसके लिए 'धनादि का ममत्व मारक है, हेय है'—ऐसी विवास कित्य करनी चाहिए ऐसे-२ विचारों से ममत्व मन्द बने और ग्रन्त मन्द हो जाए ए मा भ्रापको करना चाहिये।

थी भरतजो के ६ माईयों के प्रसंग की याद

श्राप कदाचित जानते होगे कि यहाँ जैसा प्रसग जिस्स हमा है बैसा प्रसग महाराजा श्री भरत के समय मे भी उपित्री हुआ था। श्री ऋषभदेव भगवान श्रपने सभी पुत्रों को राज्य बाहार प्रजित्त हुए थे। उनके बाद श्री भरत चक्रवर्ती बनने वाले थे भूत चपरन्त प्राट हुआ और उन्होंने छहां लण्ड साथ लिये। छते सण सात अपने पर भी चक्ररन्त यायुवणाला में प्रविष्ट होता नहीं वर्षी श्री सरव गणाराजा के निष्यानवे मार्ज्यों ने श्री भरत महाराजा ने

ऐसा विचार करके न तो मन को मनाया भ्रीर न उसने भ्रपने द्वारा हुई भूल को सुधारने का विचार किया।

उसने तो ऐसा विचार किया कि भले ही जो होना था वह हो गया, परन्तु अब तो मुभे बाए हुए कब्ट का निवारण करना ही चाहिये। श्रव तो मुभे अपने दोनो ही भाईयो को पुन. लाने ही चाहिये यदि में अपने उन दोनो भाईयो को वापिम नहीं लाता है तो मुभ में ग्रीर वनिये में अन्तर ही क्या?

कुमिक की यह कैसी विचित्र मनोदणा है ? उमने हीन ग्रादि की माँग करने भी भूल की—इस वात को वह प्रधानता नहीं देना बिक्त उमके भाई उसी कारण में उसे ग्रधेरे में रावकर नते गए इस वान को वह अपने महान् पराभव का मा महत्व देकर इने पि वह जाने दे तो उगमें स्वयं का गीरव नाट ही जाए-इम प्रभार विचारणा करना है। कुमिक ग्रानी भूल को समक्षा है, ग्रपनी भूति ना उसे रयान न प्रथा हो, एसी चान नहीं है, फिर भी बह धर्म हा साचा है जि मुझे प्रपने गौरव की रक्षा के निये क्या करते

भी जिनवचन का राग तिराता है और

ऐसा विचार करके न तो मन को मनाया और न उसने ग्रवने द्वारा हुई भूल को सुघारने का विचार किया।

उसने तो ऐसा विचार किया कि भले ही जो होना था वह हो गया, परन्तु अब तो मुभे श्राए हुए कव्ट का निवारण करना ही चाहिये। श्रव तो मुभे अपने दोनो ही भाईयो को पुन लाने ही चाहिये यदि में प्रपने उन दोनो भाईयों को वापिस नहीं लाता है तो मुभ में श्रीर वनिये में अन्तर ही क्या?

कुरिएक की यह कैसी विचित्र मनोदणा है ? उसने हुन्नि आदि की माँग करने की भून की—इस बात को वह प्रधानता नहीं देना बिट्ना उसके भाई इसी कारण से उसे अधेरे में रसकर नते गए इस बात को वह प्रधानता नहीं इस बात का यह अपने महान् पराभव का सा महत्व देकर इसे गढ़ि जार जाने दे तो उसमें स्वयं का गोरव नष्ट हो जाए-इस प्रधार जिमारणा करना है। कुमार अपनी भून को समझा है, अपनी भूग का सानना है कि प्रधान की सानना है कि मुझ अपने गोरव की रक्षा कि लिये क्या करना भागना है कि मुझ अपने गोरव की रक्षा कि लिये क्या करना भागना है कि मुझ अपने गोरव की रक्षा कि लिये क्या करना

श्री जिनवनन का राग निराना है और रववचन का राग नवीता है:



निन्दा करने वालो की क्या हालत है ? ऐसो को प्रत्यक्ष रूप से घोडी बहुत अनुकूलता हो जाती है, अत ऐसे लोग अधिक उन्मत्त वनते जाते है। इस ससार मे बुरे से बुरे काम करने पर भी, ऐमे काम करने में अनु मूलता आना सभव है। पूर्व का पूण्य प्रवल हो और उनका उदय हो, तो काम बुरा करें और लोगों से सम्मान प्राप्त करें, क्वं दुर्गन होने पर भी अज्ञान लोक में सज्जन गिना जाए और सज्जनों को कच्ट पहुँचाने में मकल हो-यह सब शक्य है, परन्तु ऐसो का इम प्रकार का पुण्य पापानुवधी ही होता है और इससे इनका भविष्य वटा भवकर होता है। ऐसे पुण्य की जो प्रणसा करे, वह भी पा का मामेदार होना है। पुण्य की उच्छा करने वाले को भी कभी पापानुवन्यों पुण्य की उच्छा करने वाले को भी कभी पापानुवन्यों पुण्य की उच्छा करने वाले को भी कभी पापानुवन्यों पुण्य की उच्छा नहीं करनी चाहिये। पापानुवनी पुण्य को प्रचेशा तो पुण्यानुवधों पाप अच्छा-ऐसा व्यक्ति को स्वय ही पान निये मान लेना चाहिये और वह भी धर्म मामग्री प्राप्त हो-

कृणिक के दून को श्री वेटक राजा द्वारा दिया हुआ उत्तर :

प्रतिष्ठ ने निर्माण कर निया कि अब नो विसी भी प्रतार के तथी था कि ना गरित अपने भाष्ट्री का उरेर पून प्रश्न समापन वर्ष का लोक नेवर ना के नो ता अपने में लाज विद्यान का पार करते. तथा के का ना का का नो ती पुन पार- कर दिन भाषि।



इस युद्ध में एक दूसरे के सैनिक कितने थे, प्रत्येक के साथ कितने कितने हाथी घोड़े रथ ग्रादि थे, तथा एक दूसरे ने कैसी कैसी ब्यूह रचनाये की थी इन वातों की चर्चा हम यहा नहीं करेंगे।

युद्ध के प्रथम दिन कुिंग्यक ने अपने प्रथम भाई काल को मेनापित बना कर युद्ध हेनु भेजा, पर वह श्री चेटक के बाग से मारा गया। दूसरे दिन दूसरे भाई को कुिंग्यक ने सेनापित बनाकर युद्ध करने भेजा तो वह भी दूसरे दिन श्री चेटक राजा के बाग से मारा गया। इस प्रकार दस दिन के युद्ध में कुिंग्यक के दसो ही भाई श्री चेटक राजा के बागो के शिकार बने।

दिच्य सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न :

्मसे कृष्णिक हनाम हो गया, श्री चेटक के माथ युद्ध करते रितृ बाने में उसने भृत भी, यह भी उसने महसूस किया परन्तु दम दम भाईमों को मृत्यु के मुग में होग देने के पण्चात् पीछे कैसे मृण दान ? उस जिचार न कृष्णिक को स्थार्गन बना दिया । इसित्य उसने देशा की प्रस्थान बनने का निर्माय किया। दैविक महामना दाल बन की बेटर राजा का जीनने की उसकी इन्द्रार्थी।

ार्गन समस्या मुहत्वा योग तिसी देव के हमान में वह तियर रहा क्ष्मित्र से पूर्व राम में साम यहा कर रमा का ग्रीर अब दी रेग को एवं भी हिना मिना इस्त दिवर महापात प्रत्य करने भी एक एक हिना के हैं। इस तारी दिवर महापता मिनी कि जिस्से इस कि हह है के सहस्र हो। दो ने देव राजा के याए से मारा के

श्री हल्ल विहरल कुिंग्सिक की सेना मे घुस कर उसकी काफी सेना का का सहार कर रात मे ही सकुशल वैशाली नगरी मे पहुँच सकते थे।

कुणिक ने हाथी को मारने के तिये किया हुआ उपाय:

ए सा होने से बिरकुल वैशाली नगरी के द्वारा तक पहुँचे हुए किए। को पुन चिन्ता हुई क्योंकि विना युद्ध के भी उसकी सेन का वहा भाग नष्ट हो चुका था।

दसमे उसने अपने मन्त्रियों को युलाकर कहा कि इस प्रकार तो हमारी सपूर्ण सेना को हल्ल विहल्ल वटम कर डालेगे, अत इसक बुध उपाय करना चाहिए।

मित्रयों ने कृष्णिक से वहा कि आपकी बात सक्ती है।
परन्त जन ना हत विहतन सेचनर हाथी पर बैठ कर शाते हैं।
पर तर तो उन्हें जीतना प्रममन ही है। श्रत करना तो यह नाहिं
दिश्य मेचनर हाथी जी ही मृत्यु हो जाए। उसके लिये सन्तर्म होर्थ ३ प्राने थे मार्ग मे एक नहीं गाई खुदबारूर उस पाई की दिश्य के होर्थ के सम्बंध करना दे और किर उस टीक दे। किर मेदर्य दे तो उस नेट स दोजा हमा श्राक्ता, तब बहु उस गाई में जि

कर्ता के साथ प्रतिम जीवर नगा, सन् उसने नगान गर विकास के विकास के स्थान से सम्बंधित के समाने से समने से साथ हैं



का पोपमा करना अच्छा है, परन्तु तेरा पोपमा करना अच्छा नहीं, नयोकि त् अपने प्राम्मो को प्रिय बनाकर हमारे कार्य की उपेक्षा कर रहा है।

पशु होते हुए भी कृतज्ञ

इस प्रगार श्री हतल विहत्त के निरमकार करने से सेचनफ टावी को गुरमा आया । गुरमा आने पर भी वह जानिवान था, अत-मरने-मरने भी स्थामी क प्रनिष्ट तो नहीं करना इस बात का उमने त्यान रसा। वर्ष पशुप्रा में भी यह गुगा होता है कि जिसका प्रज पेट में एन बार गया जिसने एक नार भी अपने ऊपर उपकार किया िमने पाचन पोपण रिया उसका यथाशका उपकार की करना परमा उभरा जा सर यो लीगज नहीं परमा । कई पश्यों में भी उस प्रतारे रा प्राचना पुरा का जैसा दणन हाता है, बैसा दर्शन मानर यात किने प्राप्ते पाता में तथा मानवा में भी। श्रीपठ श्रीप अन्दें सिने त व शता में भी बहुत सभाता द्वेम हा गया। है। जिसमें कृत-र राज्य राज है और उम्हें माथ ही नम्रण गुम होता है। उम दि है - ज राष्ट्रवा का यान प्रतारा जाय रा पर वेमा उसम भी उत्पादन है एउटान उस एम एह एवं है। इनजार धूर ^{एड} रण न्य है कि उर दूनर समाप पूरा का भी भी से सिंह दिला की न विकास हो। हे उन धान पहलांसे का नमन वास मन हुत के इ. इ. इ. इ. हे राजन अवहार सक्ष्या अपूजन जा नामा अपूजन अवहार अवहार है। इंदर्ग्ट रहर कर राहे भर मार्ग मा प्राप्त प्राप्त है। मा अपर प्रेप्तान कर राज्य गान्य माला में प्राप्त हाला है।



के पाम तो, जयकु जर को जय दिलवाने की शक्ति किसी विसात की नहीं। जयकु जर को प्राप्त करने से स्वायत्त तो अवश्य प्राप्त होता है जय ही प्राप्त होती है, कभी भी इसका पराभत्र नहीं होता, परन्तु यह जय केवल इस लोक के शशुस्रो तक ही सीमित है । इस जय का लोभ, इस जय का राग, इस जय को प्राप्त करने हेतु कृत हिसादि इन सब के प्रताप से ऐसा कर्म बन्धन होता है कि यदि उसकी तप गयमादि में निर्जरा न की हो ग्रीर उसके उदय को भोगने का गमय ध्रा जाए, तो उसके प्रताय ने ग्रात्मा को फितने ही भवो में पराज्य भोगनी पहती है, जबिक श्री भगवतीजी सूत्र के ज्ञान को प्राप्त कर, यदि इन ज्ञान मां स्वायत्त बना दे, तो दोनो लोको मे जय बाला बन गर, मदा विजयी रहने योग्य श्री मिद्धगति की स्थिति प्राप्त बरता है। अन- जब के लिये जयकु नर को बूँढकर, प्राप्त कर प्रीर् अपना बनागर मुग प्राप्त करना है-ए मा विनार भी वस्तुत. करने मीप्य नती है। जय नाहिये तो इस लोफ में भो जय दिलवाए, पर-गीर में भी जय दिलवाए थीर ग्रन्त में सदा के लिये निजयी सनाए ए की पास्या बात करवायें, ऐसी प्रमुद्रम शक्तिमय श्रा भगवतीती गुण रे अपन रा मगादन कर, इस जाने को स्वायत अर्थात् आनाः र्वासन्य बनान है विदे प्रवत्तानील बनना यहा बृद्धमला पूर्ण 4 . 1 . 1

> मुमप्रत विशेषण हो कीत है। विशेष का मुचन है?



प्रयोग द्वारा उत्तमता का सूचन नही किया गया है, परन्तु श्रौर ही कुछ सूचन किया गया है, यह वात श्राप समक्ष सके होगे।

समुन्नत विशेषण हो पूर्ण युवावस्या का सूचन :

शोभापात्र बनाता है श्रोर शत्रुश्नों के सामने इसका उपयोग करे तो जय दिलवाता है, जय ही दिलवाता है, जय दिलवाता ही है, उसी प्रागर यह श्री भगवतीजी सूत्र भी जहा रहा हो वहाँ शोभा देता है, इसके दर्शन मात्र से भी दर्शक को शोभा देता है शीर यदि इस श्री भगवतीजी सूत्र का सदुपयोग करना आए, सारी सवारियों को छोड़ उन यदि इसी की मात्र भाव सवारी श्रात्मा करे तो यह श्री भगवातीजी मूत्र इस लोक से भी जय दिलवाता है, परलोक से भी जय दिनवाता है, परलोक से भी जय दिनवाता है श्रीर परम्परा से सदा के लिये जयवन्त बना देता है।



पद्धति मे जनमन का रजन करने का गुगा है-इसमे शका नहीं, क्यों कि यह पद पद्धति ललित है, परन्तु लित ऐसी भी इम पर पद्धित से कैसे लोगों के मन का रजन होना सभव है-यह जानने की श्रावश्यकता है। सर्व जनो के मन का रंजन ऐसी लितत भी पद पद्धति से हो यह सभव नहीं, क्यों कि इस पद पद्धति में जी लालित्य रहा हुआ है, उस लालित्य को सर्व जन जान सके, पहिनान सक, यह मभव नहीं। इसमें पद पद्धित के लालित्य की कभी नहीं कही जा मकती, परन्तु जिन व्यक्तियो के मन का रजन ऐसी पर्व-पद्धति मे न हो ऐसे व्यक्तियों की कमी कही जा सकी है। इसित्र तो टीकाकार महिंप ने 'जन मनोरजक' न कह कर 'प्रबुद्ध जन मनी' रगक करा है। यह पद पद्धति प्रयुद्ध जन के मन का रजन करने यानी है-ऐसा उहा है। पूर्व व्यक्ति चात्र में समक वया ? हाथी ची चाल अन्त्री या गंधे भी चाल अच्छी. उसका निर्माय पूर्व क्या देगा ? गर तो विस्थाण व्यक्ति हो कर मकता है कि हाथी की नात माम उन्म योर गर भी उन-र नारम्यों में उत्तम । दमी प्रकार मंत्र है परंगी पद्धीत सीरत होने पर भी जो इस सानित्य को आसी में ्राः ही, वरी इस नारित्य र कारण मनीरजन का प्रमुभग वृत् रें पर है। उसे पश प्रारंपश की पत्री। का मान नती, ऐना व्यक्ति र्ता व एव सुद्धी दास मनोरात्म हा ठतुभव नहीं कर संशी। दृष्ट गर्दे गर्दा गा साथा, वर पदी वर गर्व अहि पा गम्म रेर केटे देर रोजण दहस्य रण राजीय हुमा हाल है, बर्ज वृक्ष े लहाँ र रक्ष रहें के प्रथमित करममें सराप है। अंकिर े हे हेर्द्र विकास एक का देने हते. वे सामा का के ह

> रिनकारी भी मधना में आए ऐसा करा पाला है :

प्रबुद्धजन अर्थात् विद्वान और अधिकार सम्पन्न मुनिजन

इसीलिए यहा टीकाकार महर्षि ने स्पष्टीकरण कर दिया है कि श्री भगवतीजी सूत्र में जो पद पद्धित है, वह लित जो ग्रनम है परन्तु वह प्रवुद्ध जनों के मन का रञ्जन करने वाली है। 'जन' कर के पहिले 'प्रयुद्ध' विणेपरा रखकर टीकाकार महर्षि ने बहुत ही अच्छी श्रीर बने ही महत्व की स्पष्टता कर दी है। यहा प्रबुद्ध गर्द में 'पदो का ग्रथं समक्त सके तथा पदो की चाल भो समक्त सके एमा व्यक्ति'—इतना अर्थ नेने के साथ, 'मोक्ष का अर्थी और मोक्ष के लिए मड़ने मार्ग पर प्रयत्नशील' ऐसा प्रथं लेने की भी श्रावण्याता है। मोदा गा प्रथीं भी हो श्रीर मोदा के लिए गच्चे मार्ग पर प्रयत्नशीत भी हो फिर भी वह पदो के श्रर्थ को श्रीर पद पद्धति के लालित्य को गमम न नवे-यह भी मभन है-नयोकि यह जानावरणीय वर्ष वे धर्मा गम मा विषय है, परतु परी श्रीर पद्वति क लागित्य मी ममर् गतने हेत समर्व जीप यदि मोध ता अयी हो आर भगवान हत्य रिवित्र मान्न मान पर तो प्रयत्नाभीत हो तो बह इस पद पदिति । महिन कराम बहुत और बह भी किए निर्दाप धानन्द का अनुभा

लित पद पद्धित के विषय में श्री किपत केवल ज्ञानी का उदाहनणः

इस पर श्राप समभ सके होगे कि जो पद पद्धित विद्वद्भोग्य हों जमें लित पद पद्धित कहें ऐसा भी नहीं श्रीर जो पद पद्धित विद्वद्भोग्य हों भोग्य न हो श्रयांत् सामान्य जन भोग्य भी हो, जस पद पद्धित में लानित्य नहीं ऐसा भी नहीं कह सकते। विद्वद्जन भोग्य पद पद्धित श्रीर लित पद पद्धित ये दोनो भिन्न-भिन्न वस्तुये हैं। पद पद्धित लिन हों श्रीर फिर भी वह सामान्य जनों वा मन हरने वाली हो, इसे यात के समर्थन में श्रीकिपल नामक केवल ज्ञानी महिष् का भी उदाहरण दिया जा सकता है। श्री किपल नामक केवल ज्ञानी महिष् का गर्ह ज्याहरण, जैनो में भी कई जनो को मालूम नहीं होगा। केवल ज्ञानी महिष् का गर्ह पर्दाद श्री किपल के उदाहरण में में आपको काफी बोध मिल सकता है। इस इष्टि को प्रयानता देकर यहा यह उदाहरण प्रस्तुत िया जाता है।

यमा ब्राह्मणी का रदन :

शी सदित नामर नेजनजानी महींप का वृतान्त हम प्रव है हि योगामी नगरी में जिता गयु राजा का काण्यप नामर प वैद्यार पुरोतित था। उनकी पत्नी का नाम यथा था। उनके दोर दि से वैद्वार उपाय हुटा उपाय नाम राजित रमा गया।

कर्णनार कामी तेर होती नाम का तो था। वि अन्ते जिला ते हातू हे तो तो तेर अन्ते बन का ता शाक्षा । किया बालका होते । विशेष काला ने जाता कालाहर विशो की कामपण पुनेहींतर वे ते यह दूरते बालाय की कालाहर का दिखा :

No we live to be have be able to be allowed to the



कर्म के बधन तोड़ने का पुरुषार्थ करना चाहिये:

कमं के वन्धन मे फँसी हुई एक-२ ग्रात्मा को यह बात ग्रवा लक्य मे रखनी चाहिये। कर्म के वधन मे फँसी हुई आत्मा की, मा से पहिले तो इस वात पर घ्यान देना चाहिये कि मुक्ते जो भी हुंग या दु ख की सामग्री प्राप्त होती है, वह मेरे णुभाणुभ कर्मों है प्राप्त होती है और इन गुभागुभ कर्मों का कर्ता ग्रन्य कोई नहीं पर न्त्रभाव है। उस स्वभाव के अनुभव मे अन्तराय करने वाला-वारि मेरा कम बचन ह। उनिलये मुक्ते प्राप्त अथवा प्राप्त होती गुरु है या दु म की सामग्री में मेरे लिये न तो प्रसन्त होने जैसा गुरु रोगे जंगा हुद्ध है। मुक्ते ता कैसी भी सामग्री का योग प्राणही हा तो भी मने पुरवाय का उपयोग कर मेरे कमंतवन का क्षेत्र कर रा प्रवत्न परना ही मेरे योग्य करगायि वस्तु है। मुक्ते अपति व य पत रा देवन परना हो तो मेरे प्रवक्त जोन्य शुभ अपता रि एए प्रशाम प्राप्त , इन कमी के द्वारा मृजिन रियति में समस्या है ा पर पर रोग चित्र प्रोर उसके नाथ ही हमें के मार स नी नितास का पुरुषाने वजना व्यक्ति है

भारता ने हैं जारा नह न ने आ सार, ने सी हनता थे हैं १ वर्ष के हिए जा तथा मान हमा है नह से प्रेट्स कहाँ १ विकास के हिए हैं जा देखा मान तथा है नह से प्रेट्स कहाँ १ विकास के किए हैं कि हमा प्रेटिश का से सामा मान हों १ वर्ष के किए हैं कि हमा की मान स्वास का की हैं १ वर्ष के किए हैं कि हमा की सामा की सामा की हैं की की की हमा है की हमा है की हमा है की हमा की है की

कर्म के बंधन तोड़ने का पुरुषार्थ करना चाहिये:

कमं के वन्धन मे फँसी हुई एक-२ म्रात्मा को ग्रह बात मवरी लक्य मे रखनी चाहिये। कर्म के बंधन मे फँसी हुई आत्मा की, हा से पहिले तो इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि मुभे जो भी मुन या दु स की सामग्री प्राप्त होती है, वह मेरे णुमाणुभ कर्मों है प्राप्त होती है और इन शुभागुभ कर्मों का कर्ता प्रत्य कोई नहीं पर में म्बय ही हैं। इसिवये मुक्ते अपना ही किया हुआ भोगना है, वृत्त प्रमन्न होकर या श्रप्रसन्न होकर, पागल बनने जैसा क्या है ही लिये चिन्ता करने योग्य यदि कोई भी वस्तु है, तो वह यह है मिरा गुख वर्तमान मे मेरे कर्मों के अधीन है। सुख-यह तो भेट न्यभाव है। इस स्वभाव के अनुभव मे अन्तराय करने वाला-वार् मेरा कम नवन ह। इनलिये मुक्ते प्राप्त प्रथवा प्राप्त होती गुन या दुरा ही मामगी में मेरे लिये न तो प्रसन्त होने जैसा कुछ रोंगे जेगा गुन्न है। गुने ना बैगी भी सामग्री का योग पान हैं रा ती भी मेर पुरणार्य हा उपयोग कर मेरे कर्मन्त्रण का द्वेरा है रा प्रयान रारता ही मेरे योग्न करगीय वस्तु है। मुक्ते अपीर बराम का देवन करना हो तो मेर पूत्रकृत जार शुम अवस्ता ार प्रदेश में शार , उने हमों ने द्वारा स्थित स्थिति में समस्या िर्देश कर शहर चरित्रे और उसने साथ ही सर्भ केंगार त्रकारिकार्यक प्रतिस्थाति कारणा चाहियो ।

भा भागे मृद्धिया सा सते जा सा , वे भी दान सी हैं । असे दूर सी हैं सह सा है सी दान सी हैं । असे दूर सी देश के प्राप्त कर सी हैं । असे दूर हैं

किपल का दासी के साथ सम्बन्ध .

इस प्रकार ग्रन्थयन करता हुग्रा किएल युवावस्था में प्रविष्ट हुग्रा। जिस गालिभद्र के घर वह नित्य भोजन करने जाता था, उस गालिभद्र के घर मे एक युवती दासी थी, जो किपल का नित्य बिंधा यदिया भोजन परोमता थी। युवान और हँसमुख किपल उस दासी पर मुग्ध हो गया? ग्रीर वह दासी भी उस कागल मे अनुरक्त हुई। उन दानों का प्रेम इस सीमा तक पहुच गया कि उन दोनों के बीर्य गाम नीडाये भी होने नगी।

स्त्रीजन के संसर्ग से दूर रहे:

वारनव मे युवानो के लिये स्त्रीजन का सान्निध्य, श्रान्तरशृश् नृत्य काम वो जन्म देने हेतु तथा काम को वेग देने हेतु स्थान है। युगानी को दीवानी कहते है वह इमीलिये । युवान न्यक्ति को ग्रीर भीज सम्पन्न रहना हो तो स्त्रीजन के समर्ग से दूर रहना चाहिं। रकी तन वे समर्ग में राम किस प्रकार पैदा होकर कमण अपनी क विकासिन करता है, उसरी गई युवानी को उस समय रावर है। रोधि । प्राव कई यवान यहने है कि खबतियों के माय मात्र वैहते ्रोते हे हम में प्राप्ति । या १ उनके माथ वान करने हैं। उनके विश्वार करते हे इसमें बचा धार्यात ? परस्त उस्हें पता नहीं हैं ि दे में में मार्ग राम हो की कृति होती है। ऐसे युवान में वि र्रोड कर्ष्य प्रतिमें के साथ जिन्हा पटना नेटना बाननीय कर्ण भी द्वा प जिल्ला विभागता है उतना ही सवानी के माप कर विकास पारे का विद्यास हत्य यदि इनके मार्ग विकास भार कारित ता है को विको युवन सहायपादी सिन्न के साथ विका े दे के हैं है विकास अवस्था है है र दें न में जीवा करते हैं कि मेरे किया में प्रति होता है। The second was to be the second by the second of the secon

कि ग्रधेर्य से वह मूढ ग्रीर मीन हो गया :

कपिल को ऐसा दुखी बना हुग्रा देखरर दासी ने कहा— 'ग्राप खेद न करे। एक उपाय है। इस नगर मे धन नामक जो मेंठ है, उसे जो कोई भी रात पूर्ण होने के साथ ही जगाता है वह उसे दो माणा सोने का दान देता है। ग्राप आज की रात पूर्ण के पूर्व ही उस सेठ के घर जाये और कल्यास राग मे मधुर गीत गाये।

इसे दया नहीं कर्ते

कांत्रा प्रकृत ग्रा

राज ताह राज्यों सारण कार्य सारे विशिष्ठ को राज सेना से दार है। र व्यापन करती के त्रीत करिया जानाह की है, जारोहर हैं जो नाम कर जाता का कार्य के दार है। स ताब के देवन को दार के देव देव है। से साहत सर्वा है।

श्री भगवतीजी सूत्र व्याख्यान माना प्रयत्न करे, उन सबका दु ख अवश्य ही जाए और उन सकतो गुल अवश्य मिले ही ऐसा नहीं होता। इस प्रयत्न से, दु ख जाने के वजाय श्रपना जो कुछ थोडा बहुत सुख होता है वह भी चला जाता है ग्रीर दु स मे वृद्धि ही होती है ऐसा भी प्राय होता है । ऐसे उदाहरण प्रत्यक्ष होने पर भी श्रीर ऐसा स्वय को भी पुन पन अनुभव होने पर भी जो कम की सत्ता के श्रस्तित्व को मानने से इनकार करते हैं, वे नाहे जितने वुद्धिणाली हो, परन्तु सम्यग् विचार्गा हेतु तो उननी बुढि कु ठित ही बन गई है ऐसा कहना पडता है। इसी प्रकार जो लाग अपने जवर की कम की सत्ता से होने की इच्छा नहीं रगतं, उनकी कम सत्ता के अस्तित्व सम्बन्धी मान्यता भी पगु ही है। माना यदि मात्र ग्रवने भी प्रनुभवों के सम्बन्ध में विचार करे ग्रीर बुद्धिका महायोग करे, तब भी उसे लगेगा कि 'इस समय में दुरा के नियारण भीर मुख के सम्पादन हेतु जिस प्रकार का प्रयत्न श्रीर जिस दिता मे प्रयान कर रहा है, वह मेरा प्रयत्न उत्दा है और विपरीत दिशा मे ्यदि इतना भी समक्त में ब्रा जाय तो उसे कमें के बनान से मूल ना, यारी मारे दुरा के निवारमा का और सारे मुखी के मम्पान त सन्या उपाय है ऐसा लगे और उससे वह भी दृष्टि कि मुक्ते उमे तिन्यत हे मृतः होते हेतु ने मा प्रयत्म करता चाहिय। परन्तु जगरी भेर को पहल बहा भाग पाय मृह जेगा ही बन कर बनत पर त्राचा वह वह वह भाग पाय मृद्ध जमा हा बन कर वाल है सीन इस्ति है सुर्विमें ने सुर्विम भी जैसे सफल होन वालि

अ ये आपनि और मिने मणी ऐसा भी होता है

The state of the s रे कर्न विकास के प्रति के प्रत विकास के प्रति के प्र



जहां से दण्ड पाने की सम्भावना थी, वही से कप्रिल को द्या मिली ग्रीर दान पाने का सुग्रवसर उसने प्राप्त किया।

कपिल ने कहा 'में सोचकर मांगू गा।'

राजा को इस प्रकार कह कर कपिल, 'राजा के गास का मागू ?' इस सम्बन्ध मे सोचकर निर्माय करने हेतु राजा के पास प्राः मित प्राप्त कर श्रशोक वन मे गया।

कपिल की विचारणा में किसका प्रतिबिम्ब .

श्रव श्रगोक वन में जाकर किपल, एकाग्रता पूर्वक सोचने तहा कि में राजा के पास क्या मागू? यहां किपल ने जो विचारणा है वह विशेष रूप रो व्यान में रखने योग्य है। सासार के जीवों वी मनोपृत्ति का किपल की विचारणा में प्रतिबिम्य पड़ा हुआ है एंग कहे तब भी जीवन है, श्रीर उसके श्रन्त भाग में महापुरुषों के महें भाव का उसमें प्रतिबिम्य है। ऐसा कहे तब भी जीवत है। समार के श्री के प्रचारों का मुकाब कैया होता है यह भी किपल हों जिल्लामा में देखने को मिनता है श्रीर विवेकी श्रात्माश्रों के बिनारों कि सुराब कैया होता है यह भी कापल हों जिल्ला होता है यह भी कापल हों जिल्ला होता है यह भी कापल हों कि तता है।

नितने की समावना नहीं लगी थी अर्गः इन्छा न थी

कर्मा की विश्वास की मुन्या दी मारा सोने से ही हैं। कर्म के दर्भ के कि से जिल्ला तुर साथ दो मारा को से ही हैं। के दर्भ के कि मुक्त के प्रकार मार्थ दो मारा कर्म के के दर्भ के कि के समाप है। कि से मारा के मारा कर्म के दर्भ के से दर्भ के से कि दर्भ के दें के से प्रकार की मारा के दर्भ के से दर्भ के कि दर्भ के दें के से से मारा के दर्भ के से दर्भ के कि दर्भ के दें के से से मारा की मारा



श्री भगवतीजी सूत्र व्याद्यान म श्रीर इसीलिये दो माशा स्वर्ग से चिन्तित कार्य, करोड स्वर्ग मुद्रार्थ से भी निष्ठित नहीं हुग्रा।

श्री कपिल मुनिवर के इम वृतान्त को सुनकर राजा भी विह्नि हुआ। उसने कहा भी कि भी स्नापको करोड स्वर्ण मुद्राएं भी देश हैं, श्राप वृत को छोड़ें, और भोग भोगे, क्योंकि श्रापका यह वृत का .. फल देगा इसका कोई गवाह नहीं।'

इस पर श्री कपिल मुनिवर ने राजा से कहा है राजन श्रयं श्रनथं लाने वाले हैं, श्रत स्वर्श मुद्राए मुक्ते नहीं नाहिये। नो निग्रंन्थ बना हुग्रा है। श्रत हे भद्र। श्रापको धर्म लाभ हो!'

राजा को इस प्रकार कहकर श्री किंगल मुनिवर वहा में ^{बन} पडे और निर्मल, निरपृह तथा निरहकारी वनकर विहार करने

इस प्रकार जेन का सुन्दर प्रकार से पालन करने वार्त महार मुनि श्री किति का दीक्षापर्याय जहां मात्र छ. माह का ही हुमा य मि उन्ने उरम्बन केंबन ज्ञान प्रस्ट हो गया।

इस वृतान्त को पढ़ने और मुनगे

रात्तात्र में उत्र परिवर्तन याने लगना है कोर क्राना है ल र रेड के 11 स्वीय है महरूर भी हो सरता है, उसका यह भी एहँ र पर है। यो रहीर माने हैं यह मन्यार है, दशका बह त्र वर देश के कार्य कार्य कर मार्ग में भारत हैं। इस मार्ग में भारत कर हैं कि किसा पर के हैं और विकेत सहस्र महत्र सम्बद्धाः भी स्वारत्य प्रतान । विकेत सम्बद्धाः क्षेत्र के नित्री सामा है सि प्रतान न वर अन्ति सेन्छन् रेन्स्यून होता है। सेन अन्तिक स्वार्थ है।

दारूण अटवी में पांच सी चोरी को प्रतिबोध देने गए '

श्रव हमने जिस बात के समर्थन हेतु केवलज्ञानी मुनिश्वर थीं किपल का याद किये थे, वह वात आती है। उसा समय राजगृहीं नामक जो नगरी थी, उसके अन्तराल में एक वड़ी श्रटवी श्राई हुई थी। वह श्रटवी श्रठारह योजन लवी चौड़ी श्रौर भयंकर थी। उस श्रटवी में कडदास के नाम से प्रसिद्ध वलभद्र श्रादि पाँच सौ बोर रहते थे। ये पाच सौ व्यक्ति चोरी का धन्धा करते थे, फिर भी थे योग्य जीव। उनमें योग्यता होने के साथ-२ उनकी भिवतव्यता भी घन्छी थी। वे एसे जीव थे कि सुन्दर सामग्री का योग न मिलने में घोरी पर निर्वाह करते थे, परन्तु यदि उन्हें सुन्दर सामग्री का गुगों श्राप्त हो जाए तो वे श्रवण्य प्रतिवोध पायं, दीक्षा ग्रहण करें ग्रीर मन्दर श्राराधना भी करें।

इन चीरो वी मुन्दर भिवतस्यता ने ही मानो प्रेरणा की हैं। विकास भानो बने हम श्री चिपन मुनीश्वर ने देखा कि ये और प्रत्यात के पोग्य है, श्रीर दमनिये से मुनीश्वर दन चोरो पर उपान करते हेन इन मोरों नो श्रद्धयों की श्रोर ही प्यारे।

ते भोग दानमा जटकी में उनने भे, नव भी बढी मतर्जना पूर्वण रहते के । यह भी भी सीमा एक ने स्थान तो उसने ही भे कि प्रश्नित भोड़े पान्य प्रावण काना न जाए या पक्ट न ने जाए । १९ प्रावण के कि भी दून की भोड़ी पर नदाय बराय का मार्थ प्रावण के कि कि कि मुख्या की भीड़ी पर नदाय बराय का मार्थ प्रावण के कि कि कि प्रावण की महिमी में माने १९ हैंगा की प्रावण की की की की की की है। हैंगा



वह इस निष्कपं पर पहुँचा कि सौ स्वर्ण मुद्राये मिलने पर वहिं आदि की समृद्धि न होगी, अतः मै हजार स्वर्ण मुद्राये ही माग न जिससे जिस इण्ट अर्थ की प्राप्ति हेतु मै इस नगर मे आया हूँ उसा प्राप्ति हो। उसे अपनी माता की वात इस समय याद आती है घोडे पर छत्र घारण कर नगर के मार्गों मे घूमा जा सके ऐसी मृर्णि को लक्ष्य मे रखकर ही उसकी माता ने उसे पढ़ने हेतु भेजा था औ ऐमी समृद्धि को लक्ष्य मे रखकर ही कपिल यहा पढ़ने हेतु आगा प यह वात याद है न ? यह जो बुरा बीज पड़ा था, वह भी इस गम कपिल को सताता है और सो स्वर्ण मुद्राओं के स्थान पर एक हज स्वर्ण मुद्रायों मागने का विचार करवाता है।

ताख स्वणं मुद्राओं की इच्छा:

एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ माँगने का विचार भी निर्णय के र मे जा नहीं सफता। यह विचार भी टिक नहीं सकता। उसे दगती कि एक हजार मुद्राओं से भी क्या हो? इतने से घन में सनानी शादी खादि के उत्सव हो नहीं सकते, अत. एक लाम मुद्राएं म सू और ऐसा करू इसी से मैं यावना करने में चतुर हु-ऐसा मह बाए।

करोड़ सी-करोड़ हजार वर मुद्राओं की द्र^{दश्रा}

तात्र तात्र मणां मुद्रात मागने में अपने सापनी मापना स्वापने हुए भी गांवित दाना भी मागने के विसार पर भी स्थित तात्र हुए भी गांवित दाना भी मागने के विसार पर भी स्थित तात्र माणां पुत्र हिंदार हुआ है। तात्र तात्र माणां मुद्रा है भी विष्य कर पह ला है मेरे स्थापी को ति के लिए कहा है के स्थाप पूर्व के ति के लिए कहा है। ते स्थाप पूर्व के स्थाप पूर्व के लिए के लिए कहा है। ते स्थाप पूर्व के स्थाप पूर्व के लिए के लिए कहा है। स्थाप पूर्व के लिए के लि

करना चाहिये। परिग्रह परिमागा व्रत को ग्रहिंग करने के सम्बन्ध में विचारणा करने बैठो, तब भी कपिल जैसी विचारणा आना संभी है, इसलिये इसमे सावधान रहना ग्रावश्यक है।

कपिल की विचारणा में ^{आया} हुआ परिवर्तन

अव देखिये कपिल की विचारणा में कैंसा परिवंतत भी है। एक हजार करोड स्वर्ण मुद्राएं मांगने की इच्छा तक कपित है। एक हजार करोड स्वर्ण मुद्राएं मांगने की इच्छा तक कपित है विचारणा पहुँच गई, परन्तु उसी समय कपिल के किसी णुभ कमं उदय से कपिल को बुद्धि सुन्दर परिणाम वाली वन गई क्यों कि हुँ कर्मानुमारिग्गी होती है। इसमें कपिल प्रपने वर्तमान विचार प्रवा को रोक देता है प्रार प्रपनी विचारणा के प्रवाह को विपरीत दिर में मोटता है।

कपित मोचता है, अपनी कृत विचारमा का मिटावलीर करता हमा विचार करता है कि औह ! दो माणा ही स्वा^{मी} प्राप्ति में मुझे जो गताप या, वह मतोप इस समय मुझे व^{ची हुई} मुझनों की प्राप्ति में भी नहीं। मानी इसमें ही अय प्राप्त कर कर भाग गया है।

यह वात उसने दूसरे चोरों से भी कही ग्रीर तत्पश्चात् वह ज्ञानरहित सेनापित ने श्री किपल मुनीश्वर को ग्राज्ञा दी कि 'हे श्रमण मृत्य कर ।

मुनीश्वर श्री किपल ने नाचने की तैयारी तो वताई पर्तु कहा कि 'वाद्य यन्त्र के विना नृत्य हो कहाँ से ? ग्रीर यहा कोर्र वाद्य बजाने वाला है नहीं।'

उन पाच सौ चोरों को तो येन केन आनन्द ही करना दी इमिनये उन पाँच मी ही चोरो ने तालवाद्य वजाना गुरू किया।

तालवाद्य ग्रथित तालियाँ वजाना। तालिया भी यदि ताने वह वजनी हो, तो वे वाद्य का काम दे। कई लोग धुन जमाते हैं उन्हें देगा है? एक व्यक्ति मात्र एक या दो पद ही वार बार नार्व उनरते स्वर मे गाता रहे ग्रीर ग्रन्थ मभी उसके स्वरानुमार तानि वजाते रहे अथवा मभी तालिया वजाते जायं ग्रीर उसके ये पद बार यार चटने उत्तरते स्वर मे गाने जायं, तो उसे धुन कहते हैं।

महा चोरों ने तालिया बजाना शुरू किया श्रीर श्री विशेष्ट्रियर न नाचना शुरू रिया श्रीर नाचने नाचने श्रूष पद गरे रोहे। ये श्रूष पद जैने उपदेश में पूर्ण थे, बैसे मुनने मात्र से विशेष्ट्रिया श्री का श्री

पाच मी चोतों को दोक्षा दी :

में का तभी प्रत्यक्षेणी नामनेनाचने गाम विश्वी के कि तो कि त

सुखद लगे इतने मात्र से इसे मन का रजन करने वाली नहीं वर्ष सकते। मन का रजन करने वाली तो तब कह सकते हैं जब इसका श्रवएा या वाचन जारी न हो तब भी ये पद अपनी लिलत पद्धीं के कारएा कान मे गूजते रहे और मन मे खेलते रहे। इसीलए कहां है कि इस सूत्र की जो लिलत पद पद्धति है, वह प्रबुद्ध जनों के मन का रजन करने वाली है।

सूत्रों की रचना श्रुत ज्ञानी ही करते हैं केवल ज्ञानी कभी भी सूत्र रचना नहीं करते:

श्री भगवतीजी सूत्र में कुल २,८८,००० पद हैं। ये सभी वर् लालित्यपूर्ण लगते हैं, क्योंकि इन पदो की योजना लिन पद्यतिमय है। मात्र साहित्यिक दृष्टि से ही ये सभी पद तिन है मनोहर है, ऐमी बात नहीं है, माथ ही भावना की दृष्टि में भी भे में पद निनित है। इन पदो में बाह्य नानित्य भी है ग्रीर ग्रान्तर तारि रय श्रयांत भाव लाजित्य भी है। यदि एक भी पद यथार्थ हम हदर में घर कर जाए, उसका भाव हृदय में जम जाए भीर ही प्रशास तीवन को क्रम कर यदि जीवन विताया जाय, तो इममें हमें समय में ही मुक्ति में नियास हो जाए। इसका एक एक पद मंत्राजरी र राज्यिक के पर्याप हो जाए। इसका एक एक पद मंत्राजरी र मिन्न है, क्योंकि इसकी रचना सरने साले प्रतियम भानी है। ये के रात पंत्रव होने में भीक्ष मार्ग की ही आरामना में प्रति होते हैं। र क्लेक्टर है। जगत सा बोई भी विद्वान तिस्त ती उसमें पद ही है। इ.क्लेक्टर है । इंग्रेट परो का समूह पारं है आया पारं है। अगर है विक्र कार पारा य राज्य है पान यहने हैं। परना निर्म मीश कार्य हैं इ. १९ कार नहीं निर्म परना है। परना निर्म मीश कार्य हैं ने अर क्रम्प कर्ता क्षेत्र विदेशियों के निर्मे पूर्ण पद कर्ता निर्मे कर्ता है। र्ति । इ.च. १ वर्ष प्राप्त के स्थापन स्थापन क्षेत्र के द्वार्थ है । इ.च. १९५४ मा इ.च. १९५४ मा इस्ति हो इ.च. इस्ति हैं " इ.स. प्रत्यानको देखा है जिस करोग्ना स्थापन का कार कार करते. " इ.स. प्रत्यानको देखा करोग्ना स्थापन स्थापन कार्यो । स्थापी



यहां स्वरूप को अव्यय क्यों कहा ?

पर्याय के परिवर्तन की हिन्द से द्रव्य मात्र के स्वरूप में पि वर्तन ग्राना शक्य है और ऐसा होने पर भी टीकाकार महर्षि ने हैं दूसरे विशेषण मे ऐसा फरमाया है कि जयकु जर जैसे उपस्पं निपात के समय भी अव्यय स्वरूप वाला होता है, उसी प्रकार में भगवतोजी सूत्र भी अपनी प्रत्येक स्थिति मे अव्यय स्वरूप वाली है है। स्वम्प का परावर्तन कितना श्रधिक शक्य है इस बात का टीकाकार महर्षि को पता न था ? स्वरूप का परावर्तन सभन है इसकी टीकाकार महर्षि को सबर न थी ऐसा तो कोई महा मूर्स है नहेगा। हम तो कहते हैं कि स्वरूप का परावर्तन शर^म है-यान भी टीकाकार महर्षि अच्छी तरह जानते थे। इसीनिये हा मत प्रजन उपस्थित होता है कि ये महिष जानते थे तो फिर दर्गी श्रद्यम स्वरूप को बनाने याले विशेषण् का प्रयोग क्यो वि टोराग्र महाँद ने तो समभतूर्वक ही इस विशेषण का प्रश िया है गर हमें हो गायना पड़ेगा कि जयकु जर तथा श्री भग⁴⁷ र्जी मूल दोनों के लिये उपयुक्त लग सके ऐसा इन दोनों का मार कीन मा ह जिस स्वम्प याँ सवार्य सप में छोई भी सूत्र जन मन रं राज संस्थीरार गरे। इतने माथ के नियं उस बान का हुन र्भाव दिस्तार विचा गणा है।

अय दिल्यान याचा भी और अजय भी .

जिल्ला दाना पक्षों से उपमुख्य किया हो। सहे सीर बंध के हो, तारे कि जिल्ला कर की बादी की बात को बापकी गुण रेड का भी की है। तार है दिएका है है। जो होती हैं कि है दर के दें है का क्षेत्र कि का भी असह तर बाक्ट प्रश् करवेद के है। को कि कि का का दार का स्वाह कर बाक्ट प्रश

कव हो ? अवसर पर ही हो न ? अवसर पर ही इसका अनुभी होता है और अवसर पर यदि अव्ययपन न रहे तो ऐसे अव्ययपन कोई मूल्य ही नहीं। वैसे तो पराक्रम की डीग कई हाकते हैं पर पूर्व की नौवत जब बजती है और लड़ने जाने का अवसर आता है प मे तब वे भागते हैं पश्चिम मे ऐसो को पराक्रमी नहीं कहते। मी की सच्ची कीमत कब ? कसौटी के पत्थर पर घिस कर देशा जी तब भी सोना ही रहे, उसे छेद कर जाचा जाए तब भी सोना ही र उने श्रीन में डालकर पिघला कर जाँचा जाए तब भी सीना ही रहे। तब समक्तना कि यह सच्चा साना है। सच्चा उदार कब मालूम हा स्वय कठिनाई मे हो, वडी मुश्किल से प्रपना निर्वाह करना हो, है समय मे भी जिसे याचकादि को अथवा सद्धार्मिक और माधु भी को दुवटा भी देने का मन हो श्रीर श्रवसर मिले तो दिये बिना क भी नहीं तब ! दुनिया में दिगावटी बहुत ग्रीर सच्चे उदार विगते। कैसे हजारो रूपये सर्च डालने हो, परन्तु हृदय से उदार न हो भी प्राप्त हो ऐसा भी होता है। व्यक्ति की ऐमें समय में परीक्षा होते है कि कोई जानता न हो और माँगने हेतु आए हुए को गत्ति के अह सार एं मा दे दे कि मागने हेतु आया हुआ भी निवत हो जाए। हुए तरे हि मुमे जिना प्राप्त रहने को ग्राणा न यी, उसमें कई गुण त्रिम हिला। उत्ताभी मदि आदरपूर्वक दिया हो कि दानग सामने न हो तब भी उम मागने हेतू आए हुए व्यक्ति का मन क मा नियम होने हो हो। दाना को नह भूग न मने, बार यार ही े ता तो बाद धार्म, ता तत हाथ कुट नाम । मागमे हैं। सार्थ ह कार्य के भी भी पत्र प्रथम पूर्व प्रथम की नाम मानन है। है है की भी पत्र प्रथम प्रथम प्रथम प्रथम की नाम सकते पाना की में जी करूप में उदार हैं। तो भीगते हैं। भाग द श्वन कर । हिंद के प्रकार के जाता हैं। तो भीगते हैं। भाग हुए अपील का पार्ट कि विशेष वर कर्मा को राज्या कामन का आत् हुए क्या स्व वर्ग के कि कि कि क्षित्र के कि कोणा । मागन के रुआत कृत को किल्ल के कि का का कि कुल का स्थाप काम क्ष्मिक के कि कि के कि का करता है

निकाला जाय तो निहार नहीं कहलाता। जैसे दिव्यादि जो उपस् कहलाते है, उनमे अनुकूल उपसर्ग भी होते है, श्रीर प्रतिकूल क्षी भी होते है भी होते है, उसी प्रकार व्याकरण के इन उपसर्गों के सम्बन्ध में भी अनुकूल और प्रतिकूल कहा जा सकता है। उपसर्ग कसी प्रतिकृत्वी पैदा करते है यह तो ग्रापने देखा। इसी प्रकार श्रनुकूलता भी केंसी पदा करते है, यह भी देखो। घातु का जो अर्थ हो वही वना रहे और जाते करते हैं। उसके भाव मे विशेषता पदा हो, तब उसे अनुकूलता होना कहते है। जैसे पत् घातु से पात शब्द बनता है। अब यह पत् घातु नि ज्वासी लगाने पर निकार लगने पर निपात शब्द बनता है और प्र उपसर्ग लगने पर प्रपात शब्द बनता है और प्र उपसर्ग लगने पर प्रपात शब्द बनता है और प्र बनता है। ये निपात और प्रपात शब्द पात शब्द के श्रथं को ही देने वाल है। उपसर्गों की भाँति निपात या अव्यय किसी भी धी के साथ मिलकर वाचक या द्योतक नहीं वनते । इन्हें ग्रपना ग्रम् प्रमा करने के लिए घातु का श्राश्रय नहीं लेना पहता । ये स्वतन्त्र ह में प्रवने अर्थ प्रवट करते हैं। तीनों लिगों में समान स्वर्ष वाल भी रहे, उसे भ्रथ्यम करते हैं। निवात या तो उपसर्गों में में होते यथवा निपान उपस्य या अध्यय भी वन सवते हैं ऐसा भी कर मन है। गामान्य रूप में आपको पर्याप्त ज्ञान हो जाए, इतनी बात व हो । ता पर्व मह है ति श्री भगवतीजी सूत्र में उपसर्ग भी है, निग भी ते भीर सब्दय भी है।

करना ग्रथात ग्रन्दर से बाहर निकालना । वह भी यदि वमन हारी

दुमरे प्रकार में विचारने का कारण :

श्रवल ही रहने वाला होता है। हाथी को नमक हलाल प्राणी कहते हैं। इस श्रपेक्षा से भी जयकुं जर मे श्रव्यय पन हे ऐसा कह सकते है। इस प्रकार ऐसा भी कह सकते है कि जिसमे उपसर्ग, निपात श्रीर श्रन्यय है ऐसा स्वरूप जिसका है, ऐसा जयकु जर है श्रीर इसी की मौति श्री भगवती सूत्र भी उपसर्गीद स्वरूप वाला है।



विजेपगो से हम पहिले पद पद्धति के सम्बन्ध में श्रौर दूसरे स्वरूप सम्बन्धित विजेपगा के विषय में विचारगा कर श्राए है। ग्रव तीसरे विजेपगा में, टीकाकार महर्षि शब्दों के सम्बन्ध में परिचय देने हेतु फरमाते है कि-

'घनोदारशब्दस्य'

जयकु जर की भाँति यह श्रा भगवतीजी सूत्र भी शब्दों से पूरा है। हाथी जब्द करने वाला है ग्रीर श्री भगवतीजी सूत्र जब्दों से भरा तृया है। जब्दों से महित पन, इतना ही मात्र यहा बताया है, ए मा नहीं, कैसे जब्दों से सहितपन हैं-यह भी बताया है। यहा इगी-लिये फरमाया है कि जयकु जर जो शब्द करता है वह घन ग्रीर उदार हाता है, इसी प्रकार श्री भगवतीजी सूत्र में जो शब्द हैं वे भी घनत्व य साथ उदारता सहित भी है। यहाँ घनत्व द्वारा शब्द के एएमीएं चा सूचन किया है श्रीर उदारता द्वारा शब्द की चारता ग्रामीएं पा सूचन किया है श्रीर उदारता द्वारा शब्द की चारता

> संगीत के स्वरों में कीन से स्वर की किस में विशेषता ?



लगने वाला होता है-ऐसा 'उदार' शब्द के प्रयोग से बताया गया है। जयकु जर के शब्द मे जैसे गाभीर्य और मनोहरता का समावेत है-ऐसा टीकाकार महिंप ने घनोदारशब्दस्य'-ऐसे तीसरे विशेषण से स्पष्ट किया है।

तुच्छ और फर्णकटु वाणी न वोली जाए:

यह तीसरा विशेषण भी पाठको ग्रीर श्रोताग्रो को श्री भा वतीजी सूत्र के पास ग्रीर श्रवण हेतु ग्राकर्षक वनता है। इस विभार में पाठको श्रोर श्रोताश्रो को सुन्दर बोच मिलता है। प्रत्येक बक्त को अपने वक्तव्य में गाँभीयं और मनोहरता लाने का प्रयास करती नाहिये। वागो तुन्छ नही परन्तु गभीर होनी नाहिये और गर्भी भी वागी मनोहर होनी चाहिये, अर्थात् वागी श्रवम करने वी को गह बागा कर्गात्रिय लगे ते मी होनी चाहिये। तुच्छ श्रीर कर रह यानों का बातने वालं न तो स्वयं का हित साधन कर माने रे रोट न परित्न मापन कर सरते हैं। तुच्छ, श्रीर वर्ग एड़ वर्ल बना के बनि श्रोता के हृदय में ग्रमद्भाव पैदा करती है गौर औ णें की भागी का बन्ता कदानित् उत्तम में उत्तम प्रकार की बें राता वार्वा रात्र में मर बात बिगड बाती है। हुउँ में री हैं। सार में अने जाने हो बाणी बाटन है और उत्तम बाल हैं बेटी कर होते माना पात्र यतना है, येंगे ही गमीर स्रोर में शर्मा धान । सारा व्यवस्थात वनता है। मधे पर बेटा हुआ रायण र पात्र की बनला और शर्यों पर तेंद्रा दुसा नरेंग्र हैं। रात्र के वाद करण है। तेन शितुषक और दर्शास्त्र नार्गा है। ें कर क्षेत्र किया है। कर ताल सामका है, जब कि संशोध श्रीमार्के RESTORT OF THE SECRET SECULAR SECTION SECTION

थी, वह वाणी हितकारी तो थी ही. परन्तु साथ ही गभीर श्रीर मनोहर भी थी उस समय जो कोई भगवान के णासन के रागी होंगे, स्वयर को समभने वाले होंगे, कर्तव्या-कर्तव्य के ज्ञान वाले होंगे उन्हें यह वाणी खूब ही गभीर, मनोहर श्रीर हितकारी लगी होगी। इतना होने पर भी राजा गर्वभिरल को वह वाणी प्रहितकारी, तुच्छ श्रीर कर्गे कटु ही लगी थो। तब कहना पडता है कि यह दोप वाणी या वक्ता का न था, परन्तु राजा के दूपित भाव का ही यह दोप था। इसमे यह ममभा जाए कि चाहे जो व्यक्ति कह दे कि यह वाणी या प्रमुक वाणी तो तुच्छ श्रीर कर्ण कटु है, तो इतने मात्र से उस वाणी को तुच्छ या कर्णकटु नही मान लेनी चाहिये। इसीलिये संसार में भी प्राय मवंत्र शिष्ट जनों के श्रीभिष्ठाय का ही महत्व गिना जाता है।





* *

होता है। इस प्रकार इन दोनों शब्दों के अर्थों को ग्रहण कर यी बोले, तो कह सकते है कि हेतुस्रो की रचना से युक्त यह श्री भगवर्त जी सूत्र है। ऐसा अर्थ श्री भगवतीजी सूत्र के लिये उपयुक्त भी है उस श्री भगवतीजी सूत्र में 'केरगश्चेरां एव वुच्चइ' ? ऐसा भी प्र श्राता है, जिस प्रश्न के द्वारा गराधर भगवान श्री गीतम स्वामीन ने भगवान के पास हेतु पूर्वक स्पष्टीकरण चाहा था। भगवान ने भ ऐसे प्रश्नों के उत्तर में हेतु दिए हैं। जो हेतु गम्य हो, उनमें हेतु भन एय देने चाहिये। जो हेतु गम्य हो ही नहीं, उनमें हेतु देना निषद है श्रत भगवान ने श्रपनी यह श्राज्ञा श्रपने श्राचरण से भी मिद्र क दियाई है। ऐसे प्रश्नों के उत्तर रूप मेभगवान ने जहां जहाँ हेनुओं के शनगता थी, वहाँ वहा हेतु दिये ही है। जहा हेतुओं की शनयता ही थी, वहा भगवान ने भी मात्र श्रद्धा को प्रधानता दी है। इमिलिंग श्र भगवनीजी सूत्र हेतुयों की रचना में युक्त है - ऐसा भी अर्थ करता ही केट उस चौथे विशेषणा के द्वारा हो सकता है. परन्तु हमने पहिले जो अर्थ रिया है, यही प्रथं करना ही अधिक उनित लगना है।



होता है, परन्तु क्षायिक भाव भिन्न है और ग्रौदयिक भाव भिन्न है। सभी केवलज्ञानी क्षायिक भाव की प्राप्त किये हुए होते हैं, परत्तु उनमे भगवान जैसा ग्रीदियक भाव नही होता । अत तीर्थ की स्थापना मात्र श्री तीर्थकर भगवान ही करते है। श्री तीर्थकर नामकर्म के उदय सबबी समृद्धि का सुयोग भी इन परम पुण्यवानो का ही होता है ऐसे ग्रीदियक भाव की इच्छा की जा सकती है, परन्तु वह भी प्रणस्त क्षयोपणम भावपूर्वक उत्पन्न होनी चाहिये। सांसारिक सुन सामग्री की इच्छा हो, तो श्री तीर्थकर नामकर्म की इच्छा भी दीप प्रमुं है।

ओदियक नाव की सामग्री की सफलता प्रशस्त क्षायोपणमिक भाव से तथा

क्षायिक भाव हो :

तीर्वेद्वर नाम कमं वा उदय भगवान को मुता-मुबिधा ही रामुद्री उपास्य करवाता है. परन्तु उसकी प्रशसा तो जगत के भी है ते विकास महान् सुर का प्राप्तमा धनती है, इसन्तिमें है। अवासापामा-िरंद के पाग में सून रा कारमा बनता है - उसकी यह बता नहीं परारद्वा मात्र भूत हो उत्सार के त्न के मार्ग का प्रस्पाग दानी रे. इस मार्ग का रें। प्रार्थित स्मृत वार्ग शासन वी स्थारना र राष्ट्र - व्यक्ति वर महान् सूच रा सारम् अनुसा है किया र हि अत्राहित व है। भी ही कार नाम वर्म का विवास कर आहिए से व र १८७८ में जेपर ए । वार्षिण काप जा व विकासी हैयर संग्रहण रा के राज्या के समय अपने के प्राप्त का सम्भावन स्वीता स्वीता स्वीता स्वीता स्वीता स्वीता स्वीता स्वीता स्वीता स सार वह है जात के की भी भी गान है हैं। इस कर करणाहरू वह मनी र देश देश प्रवास कर प्रवास कर है की है की की अधिक कर है है है क भेरे भारत के से केन्द्र तथा जह प्रतिस्थान को स्क्री स्थाप की स्क्री

कही गई है, वरना तो क्षरा-क्षरा प्रत्येक क्षरा मे श्री जिन की पूजा हो-ऐमा वनने का प्रयास करना चाहिये। श्री जिन की आजापावन नो श्री जिन पूजन है ही, उत्कृष्ट प्रकार की श्री जिनपूजा हैं, परन श्री जिन की ग्राजा का पालन करने के भाव मे रमगाता करना भी श्री जिन पूजा हैं। कौन सा क्षरा ऐसा है जब श्री जिन का घ्यान न हो सकता हो? श्री जिन घ्यान सर्वे क्षराों मे हो सकता है। इम प्रकार श्री जिन तान मे एक तान हो जाना वेधकता है। इम प्रकार श्री जिन तान मे एक तान हो जाना वेधकता है। इम प्रकार जो श्री जिनतान मे विधा गया हो, वह कर्मों का वेबक बनता है। ए मा मनुष्य इम मनुष्य भव मे राधावेध कर कर्मों का शमन कर, दु म के रहित मुग का भोक्ता बन मकता है। हम प्रशस्त ध्योपशम भाव का पीपगा करने हेतृ श्रीर परिगाम मे क्षायिक भाव को प्रार करने हेनू श्री जिनेज्वर प्रभु को याद करते है। श्री जिन पूजा भी प्रापत्रों ए में लक्ष्यपूर्वक करने हेतु प्रयत्न करना चाहिये।

भौदायक भाव को गोण बनाकर प्रशस्त क्षायोपशमिक भाव से विपक्षे रहना चाहिये:



म : सल्लक्षर्ग :

जयकुं जर की मांति यह सूत्र मी अच्छे लक्षणों वाला है:

प्रव याते बढ़ने पर दीराशार महिंद छटडे छितमा ने हत में ए. गर्भात्वा की बार्स करा हुए परमाहे है हि—

, mittertien,



लक्षरा युक्त जीव जब गर्भ मे ग्राता है तभी से उस जीव के माती पितादि अनेक प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि की अभिवृद्धि को प्राप्त करते है। भगवान श्री वर्षमान स्वामीजी के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही हुग्री था न ? स्त्री भी श्रच्छे चरणो वाली तथा बुरे चरणो वाली मानी जाती है। स्त्री घर के द्वार पर ग्राए तत्र से मुख सामग्री की वृद्धि हो तो वह उत्तम लक्षराो वाली मानी जाती है और मुख सामग्री घट तो उसका आगमन ग्रंगुभ माना जाता है। पशुओं में भी ऐमा कर वार होता है। लक्षणयुक्त घोड़े आदि पणु जब से द्वार पर वाधे जाते हैं, तब से उसके मालिक का कीति बढ़े सुख सामग्री बढ़े-ऐसा भी होता है। जयकु जर हाथी के लिये भी ऐसा ही समभ और श्री भा वती जी सूत्र के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समभे। जयकु जर हार्थ वागन में बाघा जाता है, हस्तिणाला में भी अलग और ग्रन्दी जगर पर बाँघा जाता है, जब कि श्री भगवतीजी सूत्र की हृद्यांगन म स्थापित करना होता है। मांगलिक घोटा ग्रीर जयमु जर ग्रादि जिम मगल का राज्या बनते हैं, बह मगल श्री भगवतीजी सूत्र को हुद्यी गत में स्थापित करने से उद्दान मगत के सामने किसी मूल्य का नि होता । वे सब तो तुच्छ, नाणवान् तक्ष्मी प्रादि के कारमा भूत हो। है और उसमें भी ग्रन्तगत निमित्त तो मालिक का पृण्योदय होता है. अवि की मगवनीजी सूत्र जिसके हृदयांगन में स्थापित ही व मिति सन्ति लक्ष्मी का स्वामी बनता है और पहाँ तम यह गर्मा म रहता है नहीं नक भी विचय कहिनमिद्रिया उनका पीड़ हैं। होर से । सो इतनो से देशि जग व्यक्ति की थी भगवतीओं ग्र धार्देश में जमा भी सत्य नहीं चरना साहित।

सति ने भी विषय भी पकड़ राम तो विवेषणील भी धगट रोजी सुन को पकड़े न रहे ऐसा भंगे हो मकता है ?

को प्रकार के क्या के एक समास्थ्य कर दिस विश्वित मुर्ग



इनकी दो भुजाओं के एक के एक-एक हजार मिलकर दो हजार देव ग्रिधिप्ठायक होते है। चक्रवर्ती के जो चौदह रत्न होते हे उनके भी एक के एक हजार क हिसाब से कुल चौदह हजार देव अधिष्ठायक होते हैं। चक्रवर्ती के नो निवानों क भी नो हजार देवता ग्रिधिष्ठायक होते है। देवाधिदेव श्री तीर्थं द्धूर भगवान जब से केवल ज्ञान प्राप्त करते है तब से व निर्वाण प्राप्त करते है तब तक जधन्य से एक करोट देवता तो उनकी सेवा में ही रहते है। युगलिक काल में जो कुछ चाहिये वह कल्प वृक्षों से प्राप्त हाता है भ्रीर वे कल्पनृक्ष देवता थिष्टित होते हैं। विन्तामिंग आदि भी देवताधिष्टित होते हैं। श्री गरेश्यर पाण्यंनाथ भगवान की मूर्ति आदि अनेक मूर्तियो के अधि-ष्ट्रायक देव हैं। इमलिये देवनाम्रों का मधिष्ठायकत्व मुनकर परेशान होने जसी बाई बान नहीं है । देवताग्रों में भी राग, होप ममत मादि है तथा अमुग-प्रमुक क्षयोपणम भी होना है। इससे उन्हें रोई पनन्य प्रा जाता है बहुन पमन्य ग्रा जाता है, अमूक पमन्य नहीं ग्राना रे विष्ठुल पसन्य नहीं जाता है। बष्ठु बर पसन्य आने जैसी वस्तु ै। यतः उसके यशिष्ठायक देव हाना सभव है।

द्रमी प्रकार यह शी भगवतीजी सूच भी देवलां जिलते हैं।
द्रवाशिश्व परत ना महरा बहुता रहता है। प्रपनी प्राणिक तरें के। महाब बहें ए सा देवला बनते हैं। देवला जिनके प्राणिक की वहीं
देव गण्या भावन गई, जमती पूजा पहें, आदि देवलां की कहीं
शिष्ट तपत है। इमाल देवलें से सम्बंत नहते हैं विम्में ने जिलते हैं। प्राणिक हैं। इसाल देवलें से साम की महाने हैं। प्राणिक हैं। है। प्राणिक से प्राणिक की किए होता है प्राणिक हैं। प्राणिक से प्राणिक हैं। प्राणिक से स्थान हैं। प्राणिक से प्राणिक हैं। प्राणिक हैं





१० : सुवर्गा मंडित उद्देशक:

रम प्रतार मात विणेषस्मों को बताने के पण्नात प्राठाँ जिल्लाम के राव में बोकाकार महर्षि फरमाते हैं कि—

गुवरां मण्डितोद्देशकस्य

पतीत् जयपु जर जैसे सुवर्ग से मण्डित उद्देशको बाता होगा है यहार तो सुवर्ग से मण्डित है उद्देशक जिसके ऐसा होता है। उमी यहार तो भगानियाँ सूत्र भी सुवर्ग से मण्डित उद्देशको ताला है अला कुमों से मण्डित है प्रदेशक जिसके, ऐसा है।

सुनमी का नार्र होता भी जोना है और अन्द्र मा हो नि को तो ता ता देव जा प्रमान्त हो ऐसा ना ऐसा भी भी भी भी तो विदेश ता करता है। अभी प्रश्नार भी अभी प्रश्ना की ता काल प्रतार का के अने अने किया अभी मार्ग के हो तो को ता किया के का नहीं का का किया के का कि का किया के को किया के का नहीं का किया मार्ग का का का का का की किया के का नाम का का का का का का का का का





१० : सुवर्गा मंडित उद्देशक:

उस प्रतार सात विशेषम्यो को बताने के पश्चात बाउने विनेपमा ने सब में बोजाकार महर्षि फरमाते हैं कि—

गुपर्णं मण्डितोहे नकस्य

य भीत् जयकु जर जैसे मुजार्ग से मण्डिल उर्ज्यको जाता रीता है यहरा तो स्वर्ण स मण्डित है उर्ज्यक जिसके ऐसा होता है, उसी करण ती भगताति स्वर्ण भी सुचार्ग से मण्डित उर्ज्यको वाला है करण है से में कि कि है उर्द्यार जिसके ऐसा है।

निया कर एके साना भी ताता के सीर साजा मन की पिता ते त्या त्या है होता पात एक तो ऐसा का मेमा भी तर्न मुख्य है के कि का का का देव इसी प्रकार मुं स्वाव हा सामी कि के कि का का का देव प्रकार ते त्या सुर्वा कर की कि के कि का का कि कि कि कि साम का कि की का का एक की कि कि का का का का का का का की का कि की का कि की



•

भाँति अपनी आँख को घुमाते रहने वाले दिन प्रतिदिन वढते जाते हैं। अर्थात रून रग मे सुगोभित वस्तु पर दृष्टि तृष्त होना अच्छा है यह वात यहा नहीं, परन्तु रून रग मे सुगोभित वस्तु के स्वरूप का यह प्रासिंग कर्गान है। दुनिया मे अच्छे वर्गा से सुगोभित वस्तुए है ग्री वे मब देयने योग्य ही हे अथवा इन सबको देखने मे आपत्ति नहीं ऐसा न मानले। हमारा विषय तो इतना ही है कि जयकु जर हाथी के जी मिर ग्रादि ग्रन्थय होते हैं वे ग्रच्छे वर्गा से शोभनीय हाते है। राग मे त्रीडा करने वालों का उन्हें देखने का देखते रहने का मन होना हैं जविक विषय निराग वाले की, विवे क्षणील की अच्छे वर्ग से शोभित अवयवो वाली वस्तु देराकर भी एसा होता है कि यह भी धर्म ग प्रभाव है। पुष्प बिना ऐसा सुन्दर स्वरूप नहीं मिलता ग्रीर पुष्प पर्म से ज्याजित हिया जाता है। वह ऐसा भी मट्सूस करता है कि एंस मुन्दर स्वरूप भी नण्यर है। एसे स्वरूपवान की मृत्यु निश्चित है। यह गौन्दर्य भीतन भर दिक भी नहीं मकता। सुन्दर भी व्यक्ति गौग वे योग में देखना भी पमद न श्राय ए सा भी होता है न ? कदावि पुरत ए मा हो कि मारी जिन्नगी मीन्दर्य बना रहे, तब भी उनमें मुख होने जेमी सीई तरतु नहीं। िहसी दिन मरना निश्चित है और उस दिन बारो कम में भागित अयम से यानी यह देह भी यही रहने वानो ै। एँग मुख्य शरीर को भी एक दिन या तो ग्रामित दाद समेगा, या नमान घे राजा जागणा या जगण के पशु पक्षो हमे मोजेंगे । ए गा र सभावे वाहे हा खाना ना परामा मुन्दर मरीर देवते रहने या मर र्ति राज्य श्रीर हमी भाष यहा स्थित होने का प्रयत्न वर ता उर् र त्रास्ता भी बोल्ने रा प्राचन स्वा है।

धी सत्र गेले क्ला के समन में विचारणाः

भाँति अपनी आँख को घुमाते रहने वाले दिन प्रतिदिन बढते जाते है। प्रयात रूप रग मे मुगोभित वस्तु पर दृष्टि तृष्त होना भ्रच्छा है यह वात यहा नही, परन्तु रूप रग से सुशोभित वस्तु के स्वरूप का यह प्रासिंग वर्गान है। दुनिया मे अच्छे वर्गा से सुशोभित वस्तुए हैं शत वे सब देखने योग्य ही है अथवा इन सबको देखने मे आपत्ति नही ऐस् न मानले। हमारा विषय तो इतना ही है कि जयकु जर हाथी के जी मिर प्रादि प्रव्यय होते हैं वे ग्रच्छे वरा में शोभनीय हाते है। राग में त्रीडा करने वालों का उन्हें देखने का देखते रहने का मन होता है जबिक विषय जिराग वाले को, विवेक्तशोल को ग्रन्छे वर्गा से शोभित अत्यवो वाली वस्तु देसकर भी एसा होता है कि यह भी धर्म का प्रभाव है। पुण्य बिना ऐसा सुन्दर स्वरूप नहीं मिलता और पुण्य वर्ष से उपाजित रिया जाता है। यह ऐसा भी महमूस करता है कि ऐसा गुन्दर स्वरात भी नण्यर है। ऐसे स्वहत्त्वान की मृत्यु निविनत है। यह मीन्दर्भ जीवन भर टिक भी नहीं सकता। मुन्दर भी व्यक्ति राग के याग ने देखना भी पमद न प्राय ऐसा भी होता है न? कराबित पुरव ए सा हो कि सारी जिंदगी सीन्दर्भ बना रहे, तब भी उसमें मुग्य रोने जेनी कोई यस्तु नहीं। हिनी दिन मरना निश्चित है और उन िन पर्वत्र तमा स शाभित अवत्रयो वाली गह देह भी गही रहते थारी ै। ऐस मुदर गरीर हो भी एक दिन या तो श्रीन दाव गरीना, मा वसाद में मात्रा वालगा या जगात के प्रमु पत्नी हमें गीजेंगे । ऐसी भगभन वर है है। भारता या पराया मुन्दर मरीर देखी रहने का गी नदा द्रा घ चौर रुभी नासर चटा स्थित होने ना प्राप्त बरे ही दी र वारश्याभी सार्गवा प्रमान नरता है।

की महत्रताती गुण के बद्धन में विचारणा.

[्]रिक्षा १८ शहर सहित्याम् अस्या व्यासी है। इ.स. १९ १९ १९ १९ १९ १९ १९ १९ अप व्यासी है। सुपास सामग्री की

होगा। कई स्थलो पर सोने का गोलाकारयुक्त त्रिकोण स्राभूपण हाथी के सिर पर चढाया जाता है। परन्तु यहा उद्देशक शब्द का मात्र सिर अर्थ न लेकर उद्देणक अर्थात् अवयव अर्थ ले तो अधिक उपयुक्त लगेगा। इसका कारएा यह है कि हाथी के मात्र सिर को ही मोने के ग्राभूपराों से मिडत नहीं किया जाता, परन्तु उसके नारों पैर पीठ का भाग कु भस्थल, कान ब्रादि भी सोने के ना सुवर्णवर्णी विविध साभूपगा से मिडत किया जाता है। श्री भावतीजी सूत्र वे गयन्य में भो इस विशेषण को इस प्रकार विठाने में सरलता होती है। यात यह है कि प्राज के सामान्य प्रकार के हाथि प्रो मे भी जो कोई विजेपतामय और राजा का मान्य हाथी होता है उसके अवयवी नी भी मुत्रगं के या मुवर्णवर्णी यामूपणो से साभूपित किया जाता है नव फिर जिन नरन्द्रों और देवेन्द्रों के पास जयकु जर होता है, वे जनके श्रवयवों को नोने के श्राभुषगों से प्रतकृत करे इसमें श्रविक विचार कर मानने जसी काई वात नहीं । साधारण बुद्धि से भी समक में आ नहें ऐसी यह बिर्मुल नीती बात है।

दूसरे अर्थ मे श्री भगवतीजी सूत्र के सम्बन्ध मे विचारणाः

रंजर करने वाली है, जयकुँ जर यदि उपसर्गों के निपात में भी ग्र रहर प वाला है तो यह श्री भगवतीजी सूत्र भी ऐसा ही है। जयनु वा घोप यदि गभीर श्रीर मनोहर है, तो इस श्री भगवतीजी सूव घोष भी गंभीर त्रीर मनोहर है। जयकुं जर यदि लिंग विभिन्त म हैं तो यह श्री भगवतीजी सूत्र भी लिग विभवित युवत है। जयकु की भाति श्री भगवतीजी सूत्र भी उत्तम प्रकार की तथा सदा प्रसि वाला है। जयकु जर यदि सल्लक्षरामय है तो यह श्री भगवतीजी ह भी मल्लक्षरामय है। जयकु जर यदि देवता अधिष्ठित है तो यह श्री वतीजी सूत्र भी देवता अधिष्ठित है ग्रीर जयकु जर यदि स्वरा मि उद्देशक बाता है तो यह श्री भगवतीजी सूत्र भी स्वर्ग महित उद्देश वाला है। इतने-२ विशेषण देने पर भी अभी तो कई विशेषण शेंग है तो रमकी इतनी स्रधिक स्तवना क्यों ? वास्तव में यह भगवतीर्व गृत ही ऐपा है कि जिस ही जितनी स्तवना की जाय, उतनी कम है। टम सब भी गुमा सम्पन्नता ऐसी है कि यह जिसके प्याल में ग्राप उसे इस नूत्र की प्रणमा करने का मन हुए विना नहीं रहे और इस प्रणमा में भी प्रज्ञया करने वाने का कल्यामा हुए विना रहे नहीं। तारा भीजों में पर गुगा रोता है कि जो इसकी सब्बे भाव से प्रशामा करता रै उसे भी मह निराना है। प्रणमा यनुमोदन का ही प्रकार है। मन्द्रिकति के यन्त्रे गापन की और यन्त्री किया की गृही और ीर पर्या में भी तिस्ति की असाधारमा शनित किनि हुई है, परन् के भी दोच मुद्र प्रस्ता प्रच्याम समाप्त स्थाप कुर एर एक दिन विस्ता को भी प्राप्त होना सुद्ध दिल होना साहिये और

मोहराजा को ह्वय में से निकासकर धाद में डालने का मामध्ये इहा गान में खाता है :

िया सूच की बालाल में भी देशनी मधिक शक्ति हो हम गुर



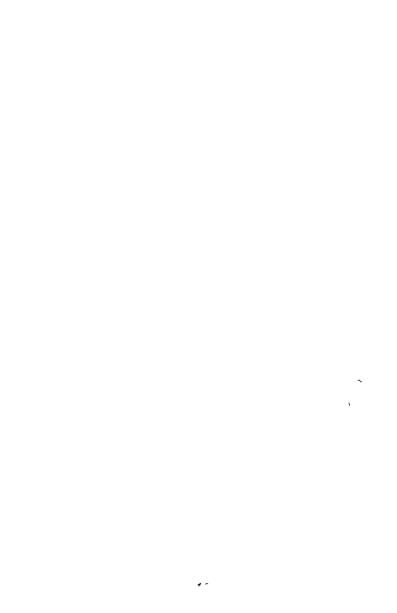
मोहराजा को डाउ मे डालने से लाभ ही होता है। इससे बेर भार वटता नही परन्तु नष्ट हो जाता है। श्री भगवतीजी सूत्र का जान जिसके ह्दय मे परिणित हो जाय, वह मोहराजा को दिल में निकाल कर डाढ मे डालने वाला वना हुम्रा कहलाता है। उनहें निकाल कर डाढ में डालने वाला वना हुम्रा कहलाता है। उनहें नमीप ग्राने में मोहराजा को भी भय लगता है क्योंकि उसे विश्वाम हो जाता है कि ग्रव हमारा वम यहा नहीं चलेगा। कई वार जो हो जाता है कि ग्रव हमारा वम यहा नहीं चलेगा। कई वार जो पटार्थ दात से भी तोडा न जा सके, दात से भी जिसका चूर्ण न गर मके, ऐसे भी पदार्थ को डाढे ग्रपने बीच दवाकर उसको चकनाजूर में डालती है। इसलिये दात में डाता एसा न कह कर डाढ में डाला कहा जाता है। मोहराजा को डाढ में डाले विना किसी का कजाए हमा नहीं ग्रीर न किमी का कल्याण होने वाला है। ग्रव गारा विनार क्या है?

मोहराजा की गार खाने वाती आत्माएँ और मोहराजा ^{की} मार से बचने वाती आ^{त्माए}ँ

सूत्र ज्ञान से मुनि को लाभा कैसा ?

ससार मे रहे हुय जीव को श्री भगवती जी सूत्र वा ज ज्ञान होता है वह तो सदगुरुयों के श्री मुख से सूत्र का अर्थ और भाव सुनने से होता है। श्री भगवती जी सूत्र का ज्ञान सूत्र है ती मुनि में ही होता है। मुनिय्रों में भी जो जधन्य से ही गीतार्थ होते हैं। जिन्होने योगोद्रहन किया होता है, बिहित निश्चित् तपश्चयार किये हुये होते हैं, वे ही अधिकारी होते है। इनके सिवाय मुनि भी अधिकारी नहीं, ऐसी शास्त्र की आज्ञा है। सम्यादृष्टि श्रावक में जब पाप भीरू होता है, तब तो सम्यग्हिंग्ट साधु तो पाप से भीर अधिक भीम होता है। पाप की भीति प्रवल हुई कि साधु बने न पाप करना महन नहीं हुमा मीर पाप के योगों की छोड़ने की ^{श[1]} प्रकट हुई, उमितिये माथुँ बने न ? ए मे साधु आज्ञा के बिना तो उ सूत्र को पढ़े ही कहाँ में ? इस प्रकार के अधिकारी जिन मांपुषी हैं इन श्री भगवती जी सूत्र का ज्ञान सूत्र से भी प्राप्त किया हो, वे त्यार में कमें सहित अवस्था में रहने पर भी मोक गुरा नी भाग वाही प्रमुभव करते हैं न ? श्री भगवतीजी सूत्र का सूत्र से, पां में गोर भार से भान हुया हो और फिर उसका बिलान हो, सी गम मृति की सामा के साथ तमे हुए समें अर्थ-अर्थ कर पाम हैं। नगी है। गरेर मृति से धापक भी सम बन सन्तर्महर्ते शिवत समार्थे िमें दर नहीं रहता।





सूत्र ज्ञान से मुनि को लाभा कैसा ?

ससार मे रहे हुय जीव को श्री भगवती जी सूत्र का जी ज्ञान होता है वह तो सदगुरुओं के श्री मुख से सूत्र का अर्थ और भाव सुनने से होता है। श्री भगवती जी सूत्र का ज्ञान सूत्र मेले मुनि में ही होता है। मुनियों में भी जो जधन्य से ही गीतार्थ होते हैं जिन्होंने योगोद्वहन किया होता है, विहित निश्चित् तपश्चया किये हुये होते हैं, वे ही अधिकारी होते हैं। इनके सिवाय मुनि भी अधिकारी नहीं, ऐसी णास्त्र की आज्ञा है। सम्यग्हिष्ट श्रावा भी जब पाप भीर होता है, तब तो सम्यग्हिष्ट साधु तो पाप से भी प्रनिक भीरू होता है। पाप की भीति प्रवल हुई कि साधु बने न पाप करना सहन नही हुम्रा ग्रीर पाप के योगो की छोड़ने की शीं। प्रकट हुई, इमिनये साधु बने न ? ए मे साधु श्राज्ञा के बिना तो इन सूत्र को पढ़े ही कहाँ से ? इस प्रकार के अधिकारी जिन नार्मी इन श्री भगवनी जी सूत्र का ज्ञान सूत्र से भी प्राप्त किया हो, वे में समार में उसे गतित अवस्था में रहने पर भी मोक्ष सुराकी भार ना ही अनुभन करते हैं न ? श्री भगवतीजी सूत्र का सूत्र में, प्रथं में भार भार में भान तथा हो ब्रीर फिर उसका चिन्तन हो, तो ऐस र्गा की मान्मा के नाय तमें तुए तमें धर्म-शर्म कर ग्रलगार्थ पात है। मोसे मुनि से धापक परिण का ग्रन्तमहर्व यशिक मगारे चित्रं द्वर गता रहेगा।





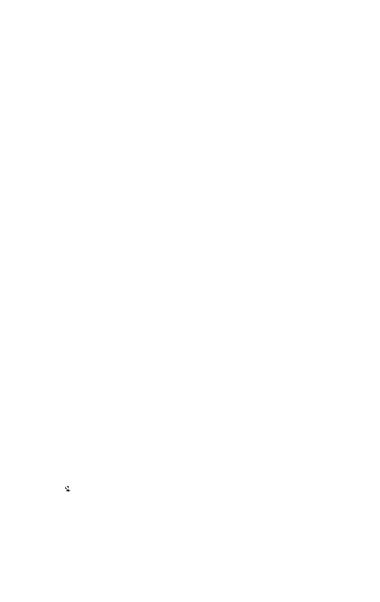
जयकु जर के सम्बन्ध में इस विशेषण

से परेशानी:

यदि समभ्भपूर्वक विचार किया जाए, तो इस विशेषण भे टीकाकार महिंव ने चरित्र के जो तीन गुरा कहे हैं, वे तीनो ही गुरा जयकु जर के लिये उपयुक्त है तथा श्री भगवतीजी सूत्र के लिये भ उपयुक्त है, परन्तु समक्त में कमी हो या विचार शक्ति में न्यूनता हो, तो यह विशेषण देखते ही परेशान होना सम्भव है। ऐसी परेशानी उपस्थित हो जाए कि जयकु जर का श्राचरण श्रनेक प्रकार का क्षेत्र हो सकता है ? वह अनेक प्रकार का हो तब भी उसे अद्भुत की कह सकते हैं? जयकु जर का आचरण अनेक प्रकार की होना नाहिये, ग्रद्भुत भी होना चाहिये ग्रीर श्रेष्ठ भी होना चाहिये। य कैसे हो सकता है ? ऐसी समस्या उपस्थित हो जाए और किर वानक जब अपनी समभ शक्ति की न्यूनता के कारण तथा विनार शक्ति की न्यूनता के कारण इस समस्या का हल निकालने में प्रमाहन रहता है, तब उसे जैमा अनुकूल लगता है वैसा अर्थ करने का प्रकर गरता है और इसमें उसमें कई उल्भने डालनी पड़ती हैं, फिर जी मू जर का नित्र अनेक प्रकार का है इस बात का बदल कर कई जब मु तरो के चरित्रों की अपेक्षा ली जाती है प्रोर इस प्रकार अति । प्रराशे का उर्एन किया जाता है। ऐसा करके भी भावरण विनिवा बनाने दूर सहोच करना है। प्रयान् किमी-किमी हार्ल मा विभिन्न मान्यम् रहा होगा-एमे निस्तर्मे पर उमे पहुँचन पराहि। कि भारता बनाने में भी ऐसा ही कुछ बहा जाति है रिस्परान्य हो नाउ भी यह श्रीन्द्र साचरमा कहागाना है।

भी भगवनों भी मूत्र क सम्बन्ध में भी इस विशेषण में समस्याः

अपूर्वक की बाक है कर सभी पुरस्ता होता. वं श्री भेर



भी वह जाना है क्योंकि वह उसे श्रेड्ठ ग्राचरण के रूप में मानत है। ग्रापको ऐसा कोई ग्रनुभव हुग्रा है या नही ? ग्रापको भी, ऐसे तो अनेक छोटे वह अनुभव हुए होगे। ऐसे अनुभव, मानव सामान्य प्रकार की विवादास्पद परिस्थिति में भी करता है। फिर भी कार् व्यक्ति अपनी बुद्धि लडाकर, 'स्वय जीता न जाए और प्रतिपक्षी गर् को जीत ले-यह आखिकार तो स्वार्थ की ही बात है न। ऐसा कहर ऐसे ग्राचरएा को प्रवर कहने मे कुछ नहीं तो ग्रन्त में ग्रन्तराय तो वडा कर सकते है न ? 'न जीता जाना और जीतना'-इसमे हम पर्गः त्रम भी वताय, तब भी वह तो इसी बात को स्रागे रखता है रि पराक्रम का प्रयोग तो स्वार्थ के लिये ही है न ? तब ऐसे को भी स्तीकार किये विना चलता नही-ऐसे जयक जर के आचरण को आणे रमना हो, तो उसे बाद के ग्राचरण की वात करनी पड़ती है। जह-कु जर ग्रपने मालिक को णत्रु के द्वारा जिताने दे नहीं ग्रीर ग्रपन मालिक के गञ्ज को युद्ध में पराभव पहुचाए ऐसा जयकु जर का प्रान-रमा तो श्राटठ ही है ऐसा उसे स्वीकार करना पडता है। इममे ती स्तार्थं के बजाय मालिक की सेवा है स्वामी भक्ति पूर्वक ग्रीर नामान्यत अन्य कोई न कर सके ऐसी मालिक की सेवा है. इमलिं जसमु जर के ऐसे आचरमा को तो श्रीष्ठ स्वीकार किए बिना चारे

त्रपशु जर के संबंध में सासारिक एटि से ही विचारणा होती हैं :

गर्दार राज भीता न जाने और शतु को जीतने के सामर कि राज म बता सार्व है या एमे यार प्राध्यस्य कहने में प्राप्त कि राज कार से नते है कोर्ड ज्यापूर्ण के के किएक की तिहिच राज कर है। या प्रकर्ण कहें, जो भीतों प्रगाद का दिया के तह है। के ही करता है। जिस्से में का महत्व सामा-



ही कहते है। वह व्यक्ति जब दूमरे पर ऐसा उपकार करता है तभी उसका वह उपकार रूप आचरण ग्रद्भुत ग्रीर प्रवर कहलाता है। ऐसी बात नहीं है। ऐसे उपकार का श्राचरण तो अद्भृत श्रीर प्रवर है ही, परन्तृ मात्र रवय अपने आन्तर शत्रुओं को जीतने न दे गीर जन जब ये ग्रान्तर शत्रु बल प्रयोग करे तन तब उन पर वह जय ही पाल करता है तो मानव का वह ग्राचरण भी ग्रद्भुत और प्रवर है। समार मे जीवो का बहुत बड़ा भाग ग्रान्तर शत्रुग्रो के ग्रधीन ही होते। है। यिवकाणत जीव तो यान्तर णत्रुप्रों की गुलामी ही करते हैं। इनमे कुछ जीव श्रान्तर णवुओ के प्रधीन रहे बिना, सदाचार के मार्ग पर चलने का प्रयास करते है। ऐसे थोड़े जीवों में भी ऐसे जीय ही बहुत ही कम होते है जो ग्रान्तर णत्रु जब ग्राक्रमण करते हैं तब रश मही हारने यहिक ग्रान्तर शत्रुप्रों को हरा देते हैं। ग्रान्तर शत्रुप्रों के परात्रम को जो समभने है, इन जनुम्रा को जीतने की जो सावणाना गमभने हो वे इस बात को शीख्र समभ सकते है कि म्रान्तर शतुरी ते तथ में न रहार मदाचार के मार्ग पर जीना और म्रान्तर शर् त्राप्तममा पर तथ उनकी पराधीनता में न फसकर, उन्हें पराजित रासा १६ असाधारमा अद्भुत स्रानुस्मा है भीर ऐमा स्नानुसम् कट्याने साम्य है। पात्तर शबुधो पर विजय प्राप्ति हेर्नु निर्मित्र हैं। में भें, पात्तर शबुधो पर विजय प्राप्ति हेर्नु निर्मित्र हैं। में भें, पात्तर शबुधों के सामनमा में हारने वाले वहुन होते हैं। मात्रो इस बात का जिल्ला सन्भव है-यह तो वैस हम जा महत्र है (पान्य विशय भीत समापका तो तो प्राप्य इस वात वा योग नहर पहुना था नो चाह ही प्रयासके हैं

प्रात्तम् से आवरण से भी क्षद्भुतना भीर प्रश्ना सा समाधित है :

तो। हर है पारत की बद्धांद्रमा और बाद्धार लॉहरीहैं। है पूर्ण ए रहावाई शास्त्र के प्रश्निक प्राप्त की है है र हो देश में स्थान के देश कारा का है जह है है है है

ओर हाथों को वेग से शत्रु सैन्य में ले जाने के लिये महा श्राजा देते हैं।



सम्पूर्ण गत्रु संन्य का नोरना हम्रा हाबी पाणे नह आना है भीर आरामका के पास पहुंचन पर की कुमारपान असोगाराज है पक्ष कर नोचे मिरा क्षेत्र है.



रहेगे। उस समय समक्त मे ग्राएगा कि कुत्ते दोनो ग्रोर से ग्रीर वी से भौकते रहते हो फिर भी हाथी शाति से चलता रहना है जाई उसका ग्राचरण ग्रद्भुत भी है ग्रीर प्रवर भी है।

मान-पान संबधी तथा ग्रन्य भी अनेक आचरण अद्भुत और प्रवर होते हैः

जयकु जर के चिरत्र को नानाविध जो विशेषण दिणां ।

उसके मवध में ही जयकु जर के विविध ग्राचरणों की हम चर्चा (र रहें हैं। उपसर्गों के समय भी ग्रपने ग्रव्यय स्वरूप को बनाए रहें गों वाले जयकु जर को आचरण ग्रदभुत ग्रोर प्रवर कोटि का है। गों करने का जयकु जर का ग्राचरण भी ग्रद्भुत ग्रोर प्रवर होता है। करने का जयकु जर का ग्राचरणा भी ग्रद्भुत ग्रोर प्रवर होता है। करने का जयकु जर का ग्राचरणा भी ग्रद्भुत गों प्रवरता होती है। खाने-पीन और ग्राचरण में भी ग्रद्भुता गों प्रवरता होती है। श्राप को यदि जात हो तो हाथी राता भी हमें प्रवरता होती है। ग्राप को यदि जात हो तो हाथी राता भी हमें ज्वार गीन में है मानो उदार जीव मा रहा हो। उमके नाते हैं ज्वार गीन में है मानो उदार जीव मा रहा हो। उमके नाते हैं प्रामाणम फाइर गाना है। यह पीना है, पर उमो प्रकार नाते। गों में पिन्ते पर पानी को ग्रपनी में मूँ ह ग्राम पान उद्यानता है। गाने में भा यह वह पानी को ग्रपनी में मूँ ह ग्राम पान उद्यानता है। गाने में भा यह वह पाना को ग्रंथा रगाना है। बडा ग्रापर गाना है। गाने में भा यह वह पाना को ग्रंथा रगाना है। बडा ग्रापर गाना है। वह गान

ार् गुननाच नमसञ्चरगायपातः भूगो निपत्य सदमोदरदर्शनं च ।

हरा विण्यास्य कुरते। सजपुंत्रयन्तुः भीर विशोधयनि चारुसनेत्रत भुद्वते भरा।"

मध्य रहत है कि मुलार रागता है भी सीन नवहर साहते. है कि इत्य कार्य का राजा सोका के स्वास है। इस्तर के



जड का भी ग्राचरएाहो सकता है-यह वात तो ग्रापकी समभ^{े है} आई न ?

प्रश्न — जड़ का श्राचर्ग होता ही नहीं ऐसा तो नहीं क् सकते। उपचार से जड़ का श्राचररा भी हो सकता है।

श्रयात्—यह श्री भगवती सूत्र जड होने पर भी इसका ग्रान रए। हो सकता है यह बात मानने मे आपत्ति नही रहती।

श्री भगवतीजी सूत्र का ज्ञानदान रूपी आचरण:

अब तो विचार यह करना रहा कि श्री भगवती जी मूत्र म आवरमा कीनसा ? ज्ञानदान ही इस श्री भगवतीजी सूत्र का भानरमा है।

प्रश्न-सही रोति से तो ज्ञानदान श्राप देते है, क्योंकि हमें हो श्रापके बोलने से ज्ञान होता है, श्रत ज्ञानदान श्राप दत ह, प्राप्त ए परन्तु श्री मगवती जी सूत्र का नहीं।

भागमे तिनक प्रियक्त विचार किया होता, तो प्राप्त ऐसा सी करों। स्नातनो ज्ञान में देता हैं, परन्तु मुक्ते तो ज्ञानदान में श्री भार कार्य नता सूत्र मरते है न ? मैन पड़ा, हमसे मुक्त जान हुया, प्रत. में भाग कानदान कर महता है, परन्तु मुक्ते यदि इस सूत्र ने झानदान र िया तो मा मा मापना यह जानदान नहीं भर समता था।

मस्त पुरतक में मानगान होते की शास्त्र होती ही नहीं विश्वी तर विकास शिवा है जान साम प्रमा का सारत है। प्रकार अर्थ की स्थापन है प्रकार अर्थ की ध्यात अक्ता है एते भी गाँद वासाय पुष्ठव पहें और गाँध हो अर्थ भागा है है है र विकास सहा ह गुरु का विकास के की साथ उपने की साथ उपने की साथ उपने की साथ कें त्राचा राम का राज आप बंग बा पा समाग नाहिता।



जड़ का भी ग्राचरणहो सकता है-यह बात तो ग्रापकी समस है श्राई न ?

प्रश्न — जड़ का श्राचरण होता ही नहीं ऐसा तो नहीं हैं सकते। उपचार से जड़ का श्राचरण भी हो सकता है।

ग्रयात्—यह श्री भगवती सूत्र जड होने पर भी इसका ग्राव रण हो सकता है यह बात मानने मे ग्रापत्ति नही रहती।

श्री भगवतीजी सूत्र का ज्ञानदान रूपी आचरणः

यव तो विचार यह करना रहा कि श्री भगवती जी सूत्र की आवरग कौनसा ? ज्ञानदान ही इस श्री भगवतीजी सूत्र की श्राचरग है।

प्रश्न—सही रोति से तो ज्ञानदान आप देते हैं, क्योंकि हमे तो आपके वोलने से ज्ञान होता है, श्रतः ज्ञानदान आपका आचर्ग है, परन्तु श्रो भगवती जी सूत्र का नहीं।

प्रापने तिनक प्रधिक विचार किया होता, तो प्राप हैमा वरी पटते। यापको ज्ञान में देता हूँ, परन्तु मुक्ते तो ज्ञानदान के श्री भार पत्ती मुग करते है न ? मैंने पटा, दमसे मुक्त ज्ञान तुझा, प्रतः में भार शानकान पर सकता हूँ, परन्तु मुक्ते यदि दम सूत्र ने ज्ञानकार के किया हो।। यो में सापका यह भागदान नहीं कर सहता था।

प्रश्न- पुरुषर में जानवान देने की शक्ति होती ही वहीं । इसमें मा जिला होता है, उस भी पह सकता है पहुंचा धर्म की रुपन करता है उने भी यदि उपयोग पुत्रक गई धीर सीने भी भी हैं रुपता है इसके किया कही स्पूर्वक से यदि जानवान करते की शक्ति हैं लक्ष्य सक का यह आह कर बाला बनमा बाहिये।



यही पुस्तक का ग्राचरण है। पुस्तक हाथ में लेकर उसमें की लिखा हुग्रा हो, उसे व्यक्ति यदि पढ सके, उसके अर्थ को सोव महें, तो उस पुस्तक ने उसे ज्ञानदान किया—ऐसा कहा जा सकता है। अचित्त पानी भी पीने वाले के गले को ठडक पहुँचाता है। इसी प्रश्री श्री भगवतीजी सूत्र का श्राचरण भी है और वह है ज्ञानदान। महि बात ग्रव भी यदि आप में से किमी की समक्त में न आई हो तो कहें। ज्ञात लम्बी होने की चिन्ता नहीं, परन्तु जब श्रापको सुनाता ह भी आप सनते हैं, तब बात तो ग्रापकी समक्त में ग्रानी चाहिंगे न

प्रश्न-यह बात श्रव तो बराबर समक्ष में श्रा गई है कैमा ज्ञान देने से ज्ञानदान अधम कोटि का गिना जाता है:

सव हमें देगना है कि श्री भगवतीजी मूत्र का जो जानरात रूपी आचरण है, वह किस प्रवार नानाविध हो सवता है प्रौर िंग वारण से यह श्रद्भून श्रीर प्रवर है। दान कैसा है, इसका निर्णे दान में जो दिया जाता है उसके प्राधार पर भी किया जाते हैं दान में जो दिया जाता है, परन्तु विधान में जो दिया जाता है, परन्तु विभागती ती गुण जी रचना मात्र को तौकर विनार के अगवती ती गुण जी रचना मात्र को तौकर विनार के अगवती ती गुण जी भाग जी यहा दाता है अगव वात है को श्री दान में हो जाने वाती वस्तु के अपर्य का जी वात दूर पर्य श्रीर दान में हो जाने वाती वस्तु के अपर्य का लिए का कि दान कै अगवती जी गुण का अगवता हो पर का लिए का कि पर के पर का स्थान हो पर के पर का लिए का कि पर के कि पर कि पर के कि पर के कि पर के कि पर के कि पर कि पर के कि पर कि पर के कि पर कि पर के कि पर कि पर के कि पर कि पर के कि पर



वान से ही हो सकता है, श्रतः ज्ञानदान की महत्ता है। भगवान भी जिनेश्वर देवो का अनुपम उपकार क्या ? ज्ञानदान किया-ऐसा की तव भी उसमे यह बात समभ कर कहनी पडती है। भगवान ने ऐसा ज्ञानदान दिया है कि इस ज्ञानदान को जिसने लिया, ग्रपना वनाया, उन जीवो पर ही भगवान के ज्ञानदान का उपकार हुआ हो. ऐसी वात नहीं, परन्तु जिन जीवों ने अपनी अयोग्यता के कारण इत ज्ञानदान के सामने प्रहार भो किया, ऐसे जीवो पर भी भगवान ने जानदान से उपकार किया है। आपको ग्राण्चर्य लगता होगा। ग्राण णायद कहेंगे कि जो जीव ज्ञानदान न ले सके, उन पर भगवान के ज्ञानदान का क्या उपकार ? श्रीर उसमें भी. उस ज्ञानदान के सामने प्रहार करने वाले जो जीव है जन पर तो जपागर विया हुया सभव ही कैसे ही सकता है ? ऐसे तो ससार में भटनते हैं। यह वात भी काटने जीसी नहीं है। भगवान के ज्ञान दान के उपार को जो श्रभव्यता बहलकमिता, सामग्री के योग का अभाव पादि तारगों में भी प्रहिंग न कर सके उनहां ससार तो पड़ा ही रहा और ज्ञानदान के सामने प्रहार करने वालो ने तो, मसार में दुगित में भटकाने वाल भारी कर्मा का उपार्णन किया-यह बात ती रात है परन्तु में सभी जीन भी भगवान के उपदेश से जीन दमा प्रेमी बर्न हुए जीने नो जीन दन की लगन को प्राप्त तो न कर समें न ि। जीवों ने भगवान रे जनवान को यहण किया, वे तो मध्यस ्यत के भीको पति हिन रामना पात यसे ही। जा जीत भगशी^त े अ भारत हे प्रधार संध्यम स्थाना यन जन जीनों की और में भग अ अगत है तो से के जिये दूर ही हो। गया। असं अगवान के सार् वैतार भगागा वे अल्यान का नहीं यहमा करने याने भी सामर भी च्या रहे के का कि है। अगवा के जानकात ही नया मह रोगी तें ^स र राम है े या कान परिशास र स्वाद्या है साथ में जो पार दें। र एत्राव अवस्थित असी याँ, साम मानान है बरीर रेसी र अर्थ १ में रहरे हैं इस्तार क्या है। कार स्थाप के पीर हैं ह भूगा रहरता स्वता स्वतार पर, र, वर्गराहरू

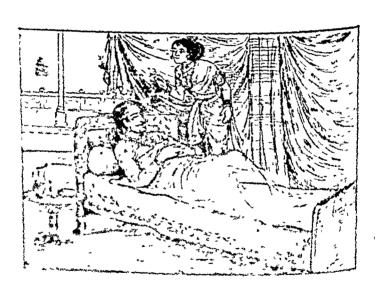
भी हो जाता है, क्यों कि भाव का लक्ष्य है, इसलिये ग्राया हुन्ना दुर्भां उमे ऐमा सताता है कि यह गुद्ध भाव मे अधिक मग्न हो जाता है। इसी प्रकार माधुवेश भी भाव के लक्ष्य वाले के लिये परम उपकार वनता है. सयम के भाव से पतित वने हुन्नो को सयम के भाव में मुस्थिर वनता है।

श्री प्रसन्नचन्द्र ने कच्चे वैराग्य मे दीक्षा ग्रहण न की थी:

राजिं प्रमन्नचम्द्र निमित्तवणात् दुईयान मे चढगए । दुईयाः में ऐसे चट गए कि यदि उसी समय वे मरे, तो मुनिवेश में होते हुं भी सातव नरक मे जाएँ। इसके बदले मे-भाव मे परिवर्तन हुई पीर उन्होने प्रन्तम् हुर्त मे ही केवलज्ञान प्राप्त किया । यह भा परिवर्तन रस्याने में निमित्त मुनिवेश में बना ना । वे कोई सामा रोटि के मुनिन थे। फिर भी प्रमगवणात् वे ऐसे दुर्ध्यान में गए तो दूसरे सामान्य लोगो का तो कहना ही वया ? ब्रापको क्षात लगा होगा कि उन्होंने करने नेराम्य में दीक्षा ती होगी और इस िये वैराम्य भागते ही वे दुर्ययान में चहे होंगे, गररपु ऐसी वा नती है। य पुण्य प्रत्य महान् विरागी थे। उनका वैराग्य कणा शास त्यानित सा। प्रवेश वैसाय झानमय धा, यडा ही हैं भ कर इसी वर में मन राय काम एक महान् राज्य के क्यामी ही। राजका काने द्वर महान् राज्य का कुमावत हथाम कर दिया। भार भागात साहत का हताय सा हिमा था, परना अवने परिवार रा का क्या देश महार लाग किया था, इसरा बारती परार भारता प्राप्त सम्भाषा विश्वास । द्वारी समुख की साम्बन्ध स · १९ रे विसर रेशवर साथ भी पन्तसम्बर्ग नाम पार शासर् पुरुष पुरुष र प्राप्त अपेर करते से स्वाप्तरसे पर संपारी THE WORLD FOR THE PARTY

मन में विश्वास है कि रानी भूठ कहेगी नहीं और स्वय ने चारों ग्रोर देख लिया फिर भी दूत कही दिखाई नहीं दिया. तव रानी ने पूछा-

रानी ने तुरन्त ही राजा सोमचन्द्र के सिर पर से एक श्वेत वाल उखाड कर राजा के हाथ मे रखते हुए कहा कि 'यह केणराज धर्मराजा का दूत है श्रत. भरु नही, पर आनन्द देने वाला है।



स्वा साम्यस्य ती मार्गात्य में रसे हुए सपने सिंग ने की विश्व की देशों जिस्से की की ने स्वार्थ की देशों जिस्से की की ने स्वार्थ की सिंग की सिं

अपने कर्मों से ही वडा होगा। आप पधारे तो फिर मुभे यहाँ प्रयोजन ही क्या ह ?''

पिता के संस्कारः

श्री प्रसन्तचन्द्र ऐसे माता पिता के पुत्र थे। राजा श्रीर रानी दोनों ही कितने उत्तम सम्कार वाले थे ? सिर पर ग्रभी तो मात्र एवं ही सफेद वाल ग्रामा है फिर भी उसे देख कर राजा का हृद्य की उठता है। "ग्रपने पूर्वजो की ग्रपेक्षा स्वय ग्रधिकविषयावत जिनता" ए मा विचार ग्राया ग्रीर उसने मन मे भारी 'सेंद उत्पन्न कर दिगा वमा यह जैमा तैसा सस्कार है। राजा का यह विचार भी श्मणान वैराग्य जैमा नहीं। मुद्दें को जला श्राये और थे जैसे के तैसे, फिर ती भूल ही जाते हैं कि हमें भी मरना है मरने वालों में हम नरी हैं। श्री प्रमन्तचन्द्र इन में में नहीं थे। यह तो वे हैं जिनके हुद्र^{ग में} तें राग्य इत्पन्न हमा कि तुरन्त त्याग करने की ही बात । थोड़ा सं निचार याया बच्चा छोटा है, यदि में छोउ जाता है तो राज्य शौर पुत्र का तथा होगा ?" परन्तु इस निचार को उन्होंने कैसा इटा कि भुरत ही निसाय किया जिस बन ही तेना है उनके निये राजा भी क्या सौर पत्र भी क्या ? हदय में मुन्दर मरकाशी की भुगत्म की नै रई नहीं हो सा एंसा विचार गाना और उसके साथ 2 विना गिर्मी या भी परमार किए स्थाम के लिये तलक होना आय शवप ही 47731

मापा के बारपान

की प्रमानमन्त्र है 'पणा जैसे जुनाम तीर के हुए या विश् कर है विश्व माणा की समाधारमह कालि की भी । भगद से हिंग कि । पर जा का दूर र जाता है दे हो र हुए आ कह स्वत्स्य माणि के । जा कि के हैं के इंडिटर करने हिंग, साम न सामित्री की

^ 4 ~ , , 5 약 # e î -72 , - ~ . .

विचार तो ए सा ग्राता है कि ए से संस्कारवान् माता-पिता के पुर सयोगवश अल्पवयस्क पुत्र को सिहासनारुढ कर दीक्षा ले तो इसमें ग्राश्चर्य जैसी कोई बात ही नहीं है।

श्री प्रसन्तचन्द्र ने दीक्षा नयो ली थी ग्रर्थात् किस कारण है ली थी यह तो ग्राप जानते है न ?

उनकी माता सगर्भावस्था में ही अपने पित राजा सोमबद्ध के साथ वन में गई थी। वहाँ उन्होंने पुत्र को जन्म दिया था। वह पुत्र किस प्रकार वडा हुआ, किस प्रकार जंगल से नगर की और उन्ने आकि पिता के पास बयो गर्म आकि पिता के पास बयो गर्म आदि वातों को यहाँ प्रसग न होने से छोड़ देते हैं, परन्तु श्री प्रसन् मन्द्र राजा के वरकल चीरी नामक छोटे भाई को अपने तापस प्रवास प्रवास के प्रकार करते समय जातिस्मरण ज्ञान हुआ और इन्हें प्रवास भें जिप नारिज का पालन किया था वह याद आया उम प्रवास भें को स्थानाम्ब हुत कि वही उन्हें केवन ज्ञान भी प्राप्त ने में ने गें में स्थानाम्ब हुत कि वही उन्हें केवन ज्ञान भी प्राप्त में मारा

केतल जानी बन हम श्री बत्कलचारी ने उपदेश देकर उने पिता श्री सोमशन्त्र का तापस में से जैन मुनि बनाया श्रीर साथ अपने यह भाई राजा प्रमन्न सन्द्र को वैराग्य वासित श्रास्तर त

इन प्रकार रेत्रा वासिन श्रन्त करमा ताति तर्ने हुए पर्मन्य पन्द्र ने वाली स्वपाली के समय गीतमपुर ध्वकर का वैराध कर किया जीव अपने वाज प्रवासी राजगरी प्रकार कर का को करता कि प्रकार का समयीका स्वस्थ की क

समय आप लोग जैसे शीशे पर आखे स्थिर कर देते हैं, उसी प्रकार इन राजिए ने सूर्य के विम्व पर अपने नेत्र स्थापित कर दिये थे। इतना ही नही परन्तु ये राजिए सूर्य के ताप से आतापना ले रहे थे। एक पाँव के आधार पर दोनो हाथ ऊँचे कर और सूर्य के बिम्ब पर नेत्रों को स्थिरता से स्थापित कर वे धूप मे खडे हुए थे। इसस प्रीने की वून्दों के कारण उनका सारा शरीर फुन्सियो वाला हो ऐसा लगना धा श्रीर वहते हुए प्सीने के पानी स उनका शरीर मानो साक्षाई शांत रस आकर खडा हो ऐसा दिखाई देता था।

शरीरमार्च खलु धमं साधनम् का रहस्य:

राजिप श्री प्रसन्न चन्द्र का वैराग्य कितना ग्रधिक उत्कट वोहि का था इसका अनुमान तो श्रापको लगता है न । जन्म लिया तभी में दीक्षा ली तब तक जिम शरीर से राज सुख भोगे, जिस शरीर वो तब तक सूर्य की किरगों भी स्पर्श न कर पाई थी श्रीर जो शरीर सुकोमलता पूर्वक ही बढता रहा उसी शरीर में राजिप श्री प्रसन्न नन्द्र कैमा कठार काम ले रहे हैं। इसका कारगा क्या। कारगा स्पर्व है, उन्हें कठोर कमीं की भेदना है।

गरीरमाद्यम् एतु धर्म साधनम् .

करने वाल तो अनेक है। ऐसा वह वर भी गरीर में हान का का निर्माण का दम ससार में अभाग नहीं है। एसी का सामन हो बनाने वाले तो हैं। का दिस्त ही को है।

त्वा राजद भरतार माना धमें की ती महना का मुनहरी। इस्ताल को और काशर धम बा सावन है। इसीविये शितर में इस्ताल के को राज जिसरे घरा शिवर की घम का साधन वर्षित मन्द्र भावित कासर की किसीब है दिसा तथा मन मुग्र है।



घमं की साधना की श्रीर ही होता है। ऐसा लक्ष्य होने से अवमर श्राने पर वह घमं की कीमत पर शरीर की रक्षा करने के बहने शरीर की कीमत पर घमं की रक्षा करना पसद करता है। ऐसी लक्ष्य होने से न्यक्ति शरीर को इस प्रकार पोपण करने के तिरे तैयार नहीं होता कि जिससे घमं का विनाश हो, इसके अलावा रून लक्ष्य से यदि भाव का सामर्थ्य वह जाता है तो श्रात्मा शरीर की परवाह किये विना भी एकान्त रूप से श्रीर उत्कट कोटि की धमं साधक बन जाती से। इसमे बहुत ही उत्कट कोटि के वैराम्य की साधक बन जाती से। इसमे बहुत ही उत्कट कोटि के वैराम्य की साधम्यकता रहती है श्रीर राजिप श्री प्रसन्नचन्द्र ऐमे उत्कट कोटि के वैराम्य भाव स रिजत हो चुके थे। इसिलये वे एक मात्र एक ही पांव पर राडे रहकर दोनो हाथों को ऊँचे कर तथा सूर्य के बिर्म पर हिन्द को श्रांवचल रूप से स्थापित कर सूर्य की गर्मी को सहन रते हुए घ्यानमगन बन इके थे।

मात्र उपादान कारण को मानने यालो को हितशिक्षा:

إماعات

सूर्य मडल के सामने हिन्ट स्थापित कर खड़े रहना तो उमसे भी अधिक कठिन है। इनका यह दुष्कर कार्य किमी को भी चिकत किए विना नही रह सबता। ऐस माहात्मा से तो स्वर्ग तो क्या पर मोई भी जरा भी दूर नही रह सकता। वास्तव मे कोई कार्य ऐसा ग्रसाध्य तो है ही नही जिम उग्र तप से साधा न जा सके।

दूसरे घुड़सवार पर विवरीत प्रभाव:

उस घुडसवार ने तो अपने हृदय का भाव अपनी वाणी हारी जितना व्यक्त हो मकता था उतना व्यक्त किया परन्तु ग्रपने साथी की ग्रार से भी ऐसा ही मनोभाव व्यक्त होगा, ऐसी उसने जो आशा रस्वी यी वह बित्कुल निष्फल रही। इतना ही नहीं बित्क उमके भाव से विल्कुल विपरीत भाव ही उसने ह्यात किया। उसके मार्थी पुडमवार ने कहा भित्र। तू उस मुनि को पहिचानता ही नहीं हैंगी मुभे लगता है। तू यदि उस मुनि को जानता होता तव तो इमरी होगी प्रशास करना की नहीं हैंगी ऐमी प्रशमा करता ही नहीं। यह तो राजा प्रमन्तवन्द्र है। इसे ऐस काट में भी किसी भी प्रकार की धर्म प्राप्ति नहीं होने बाली है। इमका तप भी वृथा है। इसका कारमा यह है कि इस राजा ने मधन वात्त्रयस्क पुत्र को राज्यमही पर स्थापित कर दीक्षा ग्रह्म हो परन्तु वृक्ष पर से वचना फल तोड गिराने को भौति, दम राजा है मनीमगा दसके पुत्र को राज्यन्युत् करने के लिये नैयार हो गुज् इस राजा न ती राज्य की रक्षा का बोक दुरात्मा मनीमगी की सीर कर बिरली नो युध की रक्षाहेनु निस्वत करने की भीति मूर्ग है र्गा है। वे मनी बालराजा का मार द्वारा स्रोट इसा वर्ग सिंह ो ताग्या । इस प्रशास अपन पूर्वभी के नाम शानाण हो हैने राम व रन शासा यह मूर्नि महान् पायी निद्ध होगा। हमी पर्व व्यव राजा को समय प्रानी जिल विवासी का त्याम रिया है व के लीय बना है। जनगर अने समाधानी की अगर होंगी हैं हैं भागमा है र मानी है।



जाङ्गा। यदि कठिनाई हुई तो नौकर को साथ ल्गा और नमोई बनाने वाला तो वही रख लिया जायगा। श्रौरत को भी होगा कि चलो, भाग्य खुले। ससार में हमारी प्रतिष्ठा बढेगी। पुत्र के लिए श्रच्छे घर की वधू श्रायगी श्रौर हमारी पुत्री को प्राप्त करने में अच्छे घर वालों को प्रसन्तता होगी—ऐसी-ऐसी नाना प्रकार की तरगों की घर वालों को प्रसन्तता होगी—ऐसी-ऐसी नाना प्रकार की तरगों की श्रीएयों का श्रापकों अनुभव होगा। ऐसे समय में व्यक्ति यह भी श्रीएयों का श्रापकों अनुभव होगा। ऐसे समय में व्यक्ति यह भी भूल जाता है कि स्वयं कीन है श्रीर कहा है 7 ऐसा मात्र शांति के समय हो नहीं होना, परन्तु व्यक्ति मार्ग पर चल रहा हो श्रीर हाते समय हो नहीं होना, परन्तु व्यक्ति मार्ग पर चल रहा हो श्रीर हाते में कोई विचार श्राया कि तरग में चढ जाता है। इस प्रकार तरंग में जो चढा हो उसे जाना होता है कही श्रौर पहुँचता है कहीं। इस प्रकार घ्यानास्ट होना सरल है परन्तु इस प्रकार प्रचानक गुप प्रकार घ्यानास्ट होना सरल है परन्तु इस प्रकार प्रचानक गुप प्रकार घ्यानास्ट होना सरल है परन्तु इस प्रकार प्रचानक गुप प्रकार होना सरल है परन्तु इस प्रकार प्रचानक गुप प्रकार होना सरल है। विवेकशील व्यक्तियों के लिए ही नमव है।

पुन विवेक मे :

राजिप प्रमन्त चन्द्र ने तो मानो मत्री उनके सामने ही राउँ हैं उम प्राार मन्त्रियों के साथ मन में ही युद्ध करना शुरु किया। अपी नजार ने प्रहार से उन्होंने मित्रियों के ट्कड़ ट्कु उं करना शुरु किया जिलार ने प्रहार से उन्होंने मित्रियों के ट्कड़ ट्कु उं करना शुरु किया पर प्रमार करते—र उनके शम्य समाप्त हो गए, तब प्रपने मिर पर प्रें हैं। किया। उस विचार में दोप तोने हेंगू उन्होंने सिर पर प्रयों ही हैं। किया। उस विचार में दोप तोने हेंगू उन्होंने सिर पर प्रयों ही हैं। किया। इस वाह हो सिर पर प्रयों ही हैं। किया माउँ हैं। नित्ति सिप ट्रू विचार पर हाथ उन्हों कि हैं। किया माउँ हैं। नित्ति सिप ट्रू विचार पर हाथ उन्हों कि का परिते कि हैं। किया माउँ हैं। नित्ति सिप ट्रू विचार पर हाथ पर प्रावं कि का परिते के का परिते कि का परिते के क

उत्तम द्रव्य के योग से ही न ? द्रव्य ग्रच्छा था तो भाव के ग्राहर्गर में कारण बना न ? एसी ही तरग में वे चढे हुए होते ग्रीर यदि वे मुनिवेश में न होते, तो परिसाम कितना भयकर म्राता ? श्री पहल चन्द्र राजिंप ने अपनी आत्मा को विचेक मे स्थापित कर दी तत्प्वन तुरन्त ही ग्रपने पाप का प्रत्याक्रमरा करने की किया शुक्र कर ही भगवान श्री महावीर परमात्मा मानो अपनी श्रांतो के सामने ही है। ए सी उन्होंने बल्पना कर ली और फिर भगवान की भक्ति पूर्ण हुई। मे वन्दन किया। भगवान को बन्दन करने के पश्चात् उन्होंने ब्रान से हो गए दुष्ट ध्यान की प्रालीचना कर प्रतिक्रम्मा की । इम प्रहीं करते करते वे प्रशस्त व्यानारूढ हो गए। इस व्यान में बढ़ते बड़ी उन राजींप ने केवलज्ञान उपाजित किया।

मनः एव मनुष्याणां कारणध वं मोक्षयो :

जिस समय राजींप प्रसन्न चन्द्र ध्यानारूट वनगर मिन्यों। का छेदन भेदन आदि कर रहे थे उस समय यदि उनकी मृत्यु होता वे नियम पूर्वक सात्रवी नरक मे जाए", एसे रीद्र ध्यान के रोह पी रामी में वस्त रहे थे। उन्हीं राजिय के मन ने अच्छे द्र^{हम} के नम्बन के कारमा पाटा सामा और इसमें वे श्वल क्यान है हिं। परियामो में बरवने तमें कि यदि उस नमय वे मरे तो मार्थि हैं विमान में उत्पान हो, और इसमें भी ते जब आसे बहें ही हैं। लेगा शान हो उपाजित कर लिया। माय त्यान में भी ने भी है। धाने कोर वारन दी णिक दिलनी क्रिका है। ध्यान से नरा देश ह मार्गेट कार्य में भी जा सकते है और शीमा कर्मी भी पति है। है। ध्या १ भी भी प्रश्न है पर सम्ब हिसी की नहीं । हुम्। हर । न कि कि महाराज महत्वामार्ग कारमा याप मोक्समी ' रहें हैं । के के प्राचन कीर मेड्स कर काम्यान के शिक्षेत्री भने प्राप्त करें हैं। के इन व्यक्तिक के प्रवासी के किया में किया के किया है। इन किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया

रूप मे परिगात होती है। इससे भी श्रागे सोने तो ऐसे भी सुपा होते हैं जो स्वम्ल मे बुरी वस्तु को भी श्रपने लिए सुन्दर बनाने ही शक्ति रखते हैं। इस प्रकार विवेक का प्रयोग करना श्राए, तो ही भगवतीजी सूत्र को पढकर कोई उल्टा सीधा बोलता हो तो उत्त कारण से श्री भगवतीजी सूत्र को दोप देने का मन नहीं होगा, परन्तु वह व्यक्ति ही श्रयोग्य है-ऐसा मानकर ऐसे बेचारे पर भी द्या का ही चिन्तन होगा।



तो है ही। इसका स्पष्टीकरण समभने हेतु सबसे पहिले तो ग्रार सोचे कि यहा अर्थात् इस विशेषण मे बताने की मुख्य वस्तु की सी है ?

प्रश्न-सूत्र रूपो देह ?

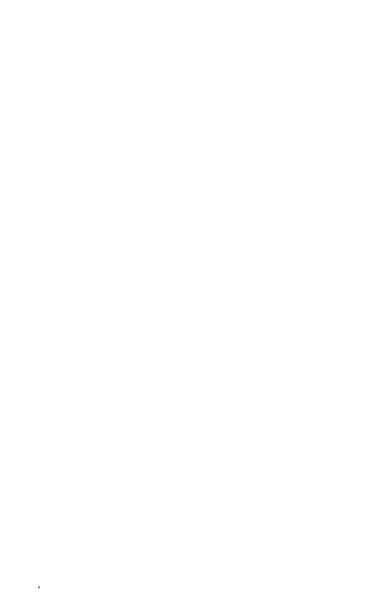




र्घ्मकथानुयोग स्रोर चरितानुयोग । श्री भगवनीजी सूत्र इन जारी स्रनुयोगो पर स्थित है।

यह सूत्र प्रतिपादनात्मक शैली वाला नही, परन्तु प्रश्नोत्तरात्मक शैली वाला है इस्तिये चारों अनुयीगो से युक्त हैं:

इस विशेषरा की यह भी एक महत्ता है कि इस श्री भगवती जी सूत्र मे चारो ही अनुयोग हैं-ऐमा यह विशेषण प्रकट करता है। जिस प्रकार इस श्री भगवतीजो सूत्र मे चारो ही अनुयोगो का समा वेश है, उसी प्रकार अन्य सूत्रों में चारों ही अनुयोगों का समावेश नहीं है। दूसरे सूत्रों के विषय में तो ऐसा कहा जा सकता है कि इस सूर्म श्रमुक अनुयोग की प्रधानता है जस सूत्र मे अमुक अनुयोग की प्रधानती है. परतु श्रीभगवतीजी सूत्र के लिये ऐसा नहीं कह सकते कि इस सूप में श्रमुक श्रनुयोग की प्रधानता है। यह सूत्र प्रश्नोत्तरात्मक है। सतीन हजार प्रथमोत्तर। सभी प्रवन किसी न किसी अनुयोग के वर्ग में मार्व ती है। प्रश्नोत्तरात्मक भैनी मे और प्रतिपादनात्मक भैनी मे अन्तर टांग है। प्रतिपादनातमा भौली मे प्राय मृत्य विषय का अविरा वसान होना है। उभमें प्रश्नोत्तर नहीं होने हो-ऐसी बात गरी है उसमें भी स्थान स्थान पर समाण प्रस्तुत कर समाधान दिये हुए हैं। ै। शरामा हा प्रमुत हर उनका निमरमा करने से जिल्म के वि इस चार भाव गटमा गुनभ वन जावा है सथा प्राप्त ज्ञान गुरु हो।" है। इस परार जा प्रानीतर सुत्र में साते हैं, जनमें जी विगण भी र राम है उसी के प्रमुख्य मा अनुहा के प्राप्त है। वे प्रत्नाहर भी शाह है परना ने प्रस्ता शिया मागर नहीं। या प्रकालन भी ए इत्ये हे के इत्याद्यां का प्रश्ने के परिपादनात्मक भीता भी एमा है क त्यवर्ति त्यान्त त्यान्त्रम् साहित् सम्मानिक स्थान हे । त्या महित्र सम्मानिक हे । त्या महित्र



अनुयोग किसे कहते है:

युज् धातु के साथ प्रनु उपसग लगने से ग्रनुयोग शहा वर्ग है अनु ग्रथित अनुकूल ग्रथवा श्रनुहर और योग ग्रथित जोड अनुकूल या अनुरुप जोड को अनुयोग कहते हैं। द्रव्य विपयम पूर् योग को द्रव्यानुयोग कहते हैं, गिरात विषयक योग को गिरातानुयोग कहते हैं, धर्माकथा विषयक अनुयोग को धर्मकथानुयोग कहते हैं और चरमा-करमा विषयक अनुयोग को चरमा-करमानुमोग कहते हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, जीय और पुद्गल ये छ द्रव्य है। इन छ. मे समावेश जिसका न हो, ऐगा प भी द्रव्य इस जगत में नहीं है। ये छ द्रव्य सत् हे या ग्रमत् है इसी पर्यालोचना जिस अनुयोग में होती है, उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं।
सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र ग्रादि सबधी जो वर्गात सूर्य प्रज्ञानि ग्रादि ग है, उमें गिमतानुयोग कहते हैं, दुर्गति मे गिरते हुए प्राणी नो म धारमा करे उमे धम कहते है श्रीर तत्म उधी कथा की धर्मामानु में ें हिन के जबकि जिसमें चरण श्रीर करण सबबी वस्तन हो, श्री है सबमी वमान हो, उसे चरमा-करमाानुयोग कहते है। साधुना है नित्यानुष्टान चरमा प्रहलाना है और साधु को प्रयोजन प्राप्त हो। पर जो पिटा त्रिणुद्ध स्नादि का स्नाचरमा करना पडता है, उमे वर्ग तहते हैं। इसमें समस्त जगत की समस्त प्रवृतिओं श्रीरणक्षणी समाजिता जाता है त्यांच्य त्या २, गाह्य वया २, ग्राह अंग की यह भी इस चार धन्योगी में ग्राजाना है। सभी जास्य इस वर्ग रहिता संपुरा है अर्थात हिसी भी शास्त्र में पाँतता अनुपाह है। च ने किसे पार्य है जो इन चारों प्रनुपोगों में समा न जा पहरें।

धारणा के राज में अनुवीमी की घटना के कारोने यानी है

एक पार में काल समान गाँव होंगे कि बाह कामरीला हो ब



शेष तीन अनुयोगो की प्रवृत्ति होने से चरण-करणानुयोग भी सं प्रधान माना गया है।

चरण-करण का आधार

कोई कहेगा कि 'काल परिपक्व न हुग्रा हो तो चरग-कर्ण क्या कर सकता है ? काल यदि न पका हो तो चरण-करण विशेष कुछ नहीं कर सकता, परन्तु जब काल पकता है तब भी चरणकरण विना तो चलने का ही नहीं न ? कोई कहता है कि काल पहा हो, पर वर्मकथानुयोग प्राप्त न हो तो चरण करण ग्राएंगी ही कहाँ से १ परज् जब धमकथानुयोग उपतब्ध हो, तब उसकी सफलता तो चरण-करह मे ही होगी न ? कोई कहता है-कान भी पका हो श्रीर धर्मकथानुषीय भी मिल, तब भी जीव लघु कर्मी न बना हो, तो चरमा-करमा नरे भी तथा ? उमे भी कहेंगे 'कि जीव को लघु कर्मी यनने के बार ही नर्म करम का ही श्रानवन तेना होगा न ?' उसके अलावा नग्स गरमा तो लघु किनता का भी कारमा बनता है, धर्म कथानुगोम ि प्राप्ति या भी कारण बनता है सीर काल की परिपायता में सटायण ताता है। किसी भी प्रकार के दूषित भाग विना ही पर^त व रस्पान्य। म वे प्राप्तार को जीव सदि स्वीकार कर से श्रीर प्रसी^त राष्यार पर दिशा रहे तो उसका निरद्धार हुए बिना नहीं रहे ^{सह स} उसरा प्रत्यान्तरमा भी साधना कर नांदी और सीता थी रंग्न (द्वारा भी परम पर रूपा रून हो प्राप्त तरने हा है) र रहासर क्षम रामाधर, भगनीना वालादेवा ^{५ मी} त्र १ वर्षात्र संस्थिति संस्थात् प्रकार स्था सम्मित्र व * *** * # # # *, } \$



प्रसग है वह नूपुर पंडिता के रूप मे प्रख्यात वनी हुई स्त्री के वित्र के साथ सबद्ध है कि यदि उस स्त्री का प्रसग जैसा हुम्रा वैसा न हुम्म होता, तो हाथी का एक पाँव पर खड़े रहने का ग्रभ्यास लोगों को जो जानने और देखने को मिला वह नहीं मिलता क्योंकि ऐसा प्रसा ही नहीं हो पाता। ग्रत नूपुर पिडता के चरित्र को सक्षेप में देवतें र ही हाथी के एक पाँव पर खड़े रहने के ग्रभ्यास वाले प्रसग पर हुन पहुच सकेंगे।

चित की चंचलता से शीलभ्रष्टता:

नूपुर-पिंडता का मूल नाम था दुगिला। देविद्रिन्न नामक सोनी की वह पत्नी थी। दुगिला मुनारिन होने पर भी उसकी नतुगई में जैसे अन्य चतुर स्त्रिया भी पीछे रहतो थी, वैसे ही वह रूप लागण्य में भी कई स्त्रियों से बहुत आगे थी। वह रूप लावण्य में जैंगे पूर्ण थी, वैसे उसके नयनकटाक्ष भी कामदेव के बास्मी का काम भी करने याने थे।

भारी विचक्षण और मुन्दरी होने पर भी दुर्गिला गदि न । विच्न वाली न होती और स्थियों के महान् आभूपण णीलपुण गिंडी होती तो उमनी विचक्षणता और उमकी मुन्दरता भी उमके ति विचे होती, परन्तु चंड तो चनत नित्त ताला श्री रामने उमें अभूप प्राप्त होती, परन्तु चंड तो चनत नित्त ताला श्री भार होते देर न लगी। बुणीतहा पैदा होने में जिल्ल की बढ़ाए परम निम्त है। जिल्ल स्थियों को अपना शीलपुण नित्त की बढ़ाए हैं उन्हें नित्त भी पनाता का त्याम पर योगचान में भी गृह हैं विच्ला की पनाता का त्याम पर योगचान में भी गृह हैं तह है। उन्हों के नित्त की चनता श्री श्री हैं के हैं। उन्हों की नित्र की चनता श्री श्री हैं। विक्र की चनता श्री श्री हैं। विक्र की चनता श्री हैं की की हैं। विक्र की चनता श्री हैं। विक्र की चनता विक्र की चनता हैं। विक्र की चनता हैं।

वृढं को विचार हुम्रा श्रव करना क्या ? उस समय जगाए तो घाघली हो । उससे घर की इज्जत जाए ग्रौर वृढा कदाचित् जीव में भी जाय । श्रव श्रगर वह कुछ भी न बोले तो सुवह में जब वह शाने पुत्र को बात कहेगा तब वह मानेगा कैसे ! इसलिये प्रमाण स्वरा उसने दुगिला के एक पाव में से नूपुर निकाल लेने का निर्णय किया। वृढं ने दुगिला के पाव में से नूपुर तो निकाला, परन्तु इतने में दुगिला जाग उठा।

दुगिला द्वारा अजमाया हुआ दाव:

वूडा ज्यो ही घर मे गया कि तुरन्त ही दुगिला ने उस जवान को जगाया और रवाना कर दिया। भेरा श्वसुर देल गया है अत त् अवसर याने पर मेरी मदद करना। ऐसा भी उसे कहा। फिर दुगिता पर मे आकर पित के पास मो गई। धीरे से उसने अपने पित को जगाया और कहा कि यहा बहुत गर्मी लगती है, नलो वािशा में नरे।

ऐसा वह कर वह देवदिन्त के साथ बाटिका में गई औं जिस रवान पर पहिले वह जवान सोगा था, वहीं देवदिन्त को सु^{गा} तर स्वय भी पास ही सो गई। ग्रालिगनादि से देवदिन्त को प्र^{वर्ग} कर स्वयं इस निहाधीन कर दिया।

ति नाहा मा समय ज्यानीत हुमा कि उसने देविस तो पा र गन किया। उसे रहा कि नुस्तारे चर में ऐसा जिलिय किया? कि इसा पत्र प्रावस्तु माण साथे हो, वहा जिला आये, खाँ रे का ति प्रोवे हमा पोला में से सुप्त निवाल ते जाये। देखा कि र र , र गा त्य कार का को में में है हो भा पास सोने हो, कि को देवा कर के प्रशास कर को सा सुप्त किया ने मों

होद्दर्भ र छ। ११ में छ १ संस्था १ सहस्य देखा है



हुआ और त्रापने ऐसा किया जिससे मुक्ते लिजत होना पडता है। पिता होकर श्राप मेरी श्रपकीति न फलाएँ। यह महा सती हैं-ऐसी मुक्ते पूर्ण विण्वास है।

हुगिला का सम्मान:

कुलटा को ऐसा पित मिल जाए फिर चाहिये ही क्या १ वूर मीन रह गया, तब भी दुर्गिला ने उस बात का पीछा न छोडा। उस फहा दैविक किया से मैं अपने सतीत्व को सिद्ध करू गीं और उस जिम भी ऐसा किया कि वह मती के रूप में सिद्ध हुई। दुनिया के उसका इस प्रसग से वडा सम्मान हुआ। वह प्रमग हुआ, तब ने दुर्गिला 'नूपुर पण्डिता' के नाम से पहिचानी जाने लगी।

एयाति का प्रयत्न न करके,

अच्छा काम करने का और

अच्छे बनने का प्रयत्न करें:

ऐसा। सब फुछ हो जाने से—जिसकी कल्पना भी न की अ
सके—देनदिन्न के पिना देवदन को भारी आधात पहुँचा। पुष्कि
उम जवरदन्त मुँह की खिलाई। श्रांखों से देखा हुआ परीक्षि
हिमा श्रोर निणाना भा ती गई, फिर भी देवदत्त भूक निर्देश
श्रोर कर से निर्वाञ्ज भी सिद्ध हुआ। ऐसा कैसे हुण होता
हिना कु हा थी, भन्नी थी, कपट पूर्ण थी, फिर भी सन्ती, हैं
जार स्वार्थ करा से प्रत्यान हुई तथा दुनिया श्रीर पिन से महिन्
वार प्रवाद करा महिन्द स्वीर हिन्स श्रीर पिन से महिन्
वार उपात करा महिन्द श्रीर हिन्द श्रीर मन्ना होते हुँ हैं
वार पर हों। भूका सिद्ध हुआ। इसमें कोई इन प्रति हैं। केसे
वार पर वार करा महिन्द हुआ। इसमें कोई इन प्रति हैं। केसे
वार पर वार करा करा होता हुआ। इसमें कोई इन प्रति हैं। केसे
वार पर वार करा होता है। पूष्य कर्ष श्रीर हिन्द



श्रनायास ही मिल गई। राजा ने देखा कि ग्रन्त पुर के रक्षक के ह्य में यह वड़ा ही उपयोगी व्यक्ति है । इसात्त्रये उस बूढे को राजा वे मुँह मागा वेतन निश्चित् कर अन्त पुर का रक्षक नियुक्त किया।

राजा की अनेक रानियों में से एक रानी कुलटा थी। ग रक्षक उम रानी का भक्षक बना। वह रानी बार-बार देखती रहती थी कि नया रक्षक सोया या नहीं ?

इस अकार एक ही रानी उसे वार-२ देखती रहने से बूट हो णका हुई। 'यह रानी मुक्त बार-२ क्यो देग रही है ?'- शका का निवारण करने के लिये बूढे ने मोने का ढोग किया।

उस रानी को लगा कि बूढा सो गया है अतः वह तुरा बाहर आई ग्रीर बूडा गहरी नींद में सो गया है या नही-इसाी औं



होता तो दास ही है न ? परन्तु रानी ने दास को देव बनाया धा और ज्सी का फल उसे भोगना पड रहा था। कामाधीनता वश तो दास को देव बनाने से दास के हाथो पिटाई भी सहन करनी पडती है। कामाधीनों को कैसी कैसी गुलामी सहन करनी पडती है ? यह बात अधिक विस्तार से कहने के वजाय आप इतनी सूचना से ही सम्भू जाएँ तो श्रधिक ग्रच्छा है। आप यदि ग्राचरगो की गात भार से विवेक पूर्वक मालोचना करने लग जाएँ तो यह ससार तो ऐसा है कि आपको क्षरा भर भी इसमे रहना प्रिय न लगे। प्राप जो बहुत कुछ महन करते है। वह अपनी महन शीलता के कारण नहीं, परत् विषय कपाय के आवेश में है इसलिए करते हैं। आप में यदि सची नहनगीनता का गुरा होता, तो धर्मस्थानों में यह गुरा अवश्य दिराई देना ग्रीर सामारिक स्थानो की प्रपेक्षा वहाँ विशेष रूप से दिगाई देना परन्तु श्राम सेठ का बहुत कुछ सहन करने बाले भी गुर का सामान्य आदेण तक सहन नहीं कर सकते। रोटी-रोणी कमाने के लिए भारा उच्छ महन बरने वात, धर्म त्रिया के सामान्य वाट में भी थ में भाते हैं। प्रतिकमसा में जहां लड़ा रहना पटता है, राड़े हों हरे िटा संद्र पानो बैठना हो वटाँ उस तरह बैठ कर और जहां समार र तमें देने टी बहा पानों ही श्रात मिरो इस प्रकार समासमसों दों रित अतित्रमान की तिया वस्ते बाते कितने ? भगान के समक्षा पर में समात प्रत्माशीयत मंगीता ता गामन करने गांव शितने हैं र किए भाष्या ना हाथ लोड कर सावर गरने जाने किलने ? भी िराना जग्ने रानी भी मन्यवन के टायो टायी वाधने की सीट का ्रेट प्रणाद महार सन्भ न क्यों है। कारण है बारण सहस्र मह ्रे रेट इन सार्वाच्या त्यासारी

हो र भाव हुआ कि लाम में पुनः विस्त गाई :

मा १ दे हैं है। बाद कर के दे ही है - साम कर के सार है



अव राजा के गुस्से की सीमा रहे ? राजा ने वही पर रानी से कहा-'मदोन्मत्त हाथी के साथ कीडा करने में डर नहीं खाती श्रीर लकड़ के इस हाथी से डरती है ? लोहे की जजीर के प्रहार से हिंपत होती है और कमलनाल के प्रहार से मूछित होती है ?'

अच्छा राजा कैसा हो ?

रानी का व्यान आकर्षित करने हेतु इतना कहना पर्याप्त था। रानी भी समभ गई।

इतना कह कर राजा सीघा ही वैभारिगरि पर गया। वहाँ उसने उस व्यभिचारिएगि रानी को बुलवाई तथा हाथी सहित महा-वत को भी बुलावाया।

राजा की खाजा से वहा नगरजन भी एक वित हो गए। इसके पण्चात् राजा की खाजानुमार नागरिकों के समक्ष मारी वस्तुस्थिति प्रस्तुन की गई जिससे लोग राजा की जग खाजा के रहस्य की भी समभ सके और 'इस राज्य में ऐसे खपराज का भयकर से भयकर वण्ड होता है, खत हम तो ऐसा खाराध करे ही नही-ऐसी नगरजनीं को भी विकासित।

मारा उम्र स्थाय बाते हो, परन्तु मूर्य नहीं होने नाहिये।
मूर्य यदि भाग बन जात, तो वह उम्र मानन बाता नहीं बन सफता।
सान इंट्रो, रायमन रुगने बाते हो परन्तु मजनती को पीड़ा पड़ियान
पान संदे नाहिय। महाता पामक नह भहाताता है जो बुजना का
साज के नाहिय। महाता तो ही महामता करने ताता हो। जिन साज के नाहि होई दे का कुल गा पूर्वे मानान मानन ता है। पान संदे के सह होता है का स्था के स्थान सानन ता है। पान

तुरन्त लोगो ने महावत से पूछा कि-'हे महावत श्रेष्ठ। एन पाँव पर खड़े हुए हाथी के पास शेप तीनो ही पाँव शिखर पर रराव कर हाथी को सकुशल पुन नीचे उतारने का तुक्त मे सामर्थ्य है क्या

महावत ने उस ग्रवसर का लाभ लेकर कहा- राजा यदि हैं। दोनों को अभयदान देते हो तो इस हाथी को सकुशल में नीरें उतार दूँ।,

लोगो ने राजा को पुन: निवेदन किया। लोगो के कहने प राजा ने महावत और रानी को अभयदान दिया।

राजा के अभयदान देने के साथ ही महावत ने उस हाथी कं कुगलतापूर्वक पर्वत के णिसर पर से ठीक नीचे पृथ्वी पर उतारा फिर हाथी को राजा रावकर महावत और रानी हाथी पर से नी उतार गए।

राजा ने उन्हें कहा-'मैने तुम्हें स्रभयदान दिया है, सत हैं तुम्हें विना कोई सजा दिये स्रपने राज्य में से बाहर चरी जाने वं गाजा देना है।'

राजा के इस प्रकार आजा करने से वह महाबस और वह रानी वहाँ में परराज्य में जाने हेन् निकल पड़े।

कथा-प्रमग का उपनय:

उस कथा ते यामे के भाग का यहाँ हमें प्रयोजन नहीं। इस दे तार हमें देखना यह था कि हाथी नार पैसे नाका होता है, भार भैते के दासा हो भावते आदि की प्रवृत्ति कबने वाला हाथा है, भिर्म की में अवका हो जाए ता एक गां। यह भी अवनी देह और ^{प्रा} देश बैटे हमा को जाता करता करते को उसमें अद्भाव करा भी हो को ते के प्रवृत्ति ने कहा है कि स्वास्त्र मृत्यू में को भाषा

ढेर लगे, इतने रजोहरएा हाथ मे आप और गए-ऐसा मुना है न? ऐसा कैमे हुग्रा होगा ? वहाँ हृदय मे विपरीत भाव विद्यमान ही रहा होगा। मात्र विपरीत भाव वैठा हुग्रा-ऐमा ही नही, परन्तु उसका आग्रह भी घुसा हुआ रहा होगा। जहाँ विपरीत भाव रुपी निप हृदय मे पड़ा हुआ हो, वहाँ चरएा-करएगानुयोग चाहे जितना समयं होने पर भी क्या करे ? आखिर कार विपरीत भाव का यदि आग्रह न हो ग्रीर यदि कोई समकाने वाला हो ग्रीर विपरीत भाव का त्याग करने मे देर न लगे तभी चरण करणानुयोग लाभ पहुँचा मकता है। पत चरगा-करगान्योग की यह जो महत्ता बताई जाती है, वह जीव के अच्छे लक्ष्य की श्रपेक्षा से ही बताई जाती है। जिसका लक्ष्य बुरा नहीं, बुरे लक्ष्य का जिसे श्राग्रह नहीं, ऐसा जीव चरमा-करुमानुयोग के प्रताप से निर्मलता को प्राप्त करता हुआ परिपूर्ण निर्मलता को प्राप्त कर सवता है। विशेष ज्ञान से रहित भी जीव में लिए, यदि उसका तथ्य अच्छा हो, तो चरण-करणानुगीग परम उपकार का कारमा वन जाता है। ज्ञानी भी चरमा-करमानु-योग का मालबन गहुगा कर ही तिरता है। कोई भी जानी चरण करमानुयोग के त्रालबन के निना तिर न से हा। स्रत सामान्य प्रहार का भी सब्ने ज्ञान वाला यदि नर्सा करसान्योग मे यथावत् सुरियर हो ताम, तो उमरा विस्तात हुए विना रहता ही नहीं।

मुनि बनने की भाजना है तया ?

भाषपुत्र नामन मुनियर की चर्चा भी हम कर चुके हैं। जिहें हा रुष और मानुष भी गाइन रहे, ऐसे मूनिने भी केनच जाने पाट किया की किसते प्रभाव में ? उनके राज्य में कृतना वर्ग भी र की परस्तु करण प्रस्मानुषीय में आल्फ्डन के किस कथा ने इंडिजार पाल कर मुक्त में दें हम मान्न नरमा करमा नुषीय के क स्टब्द के बहु स्टुर्ज कर दे सम्बद्ध कारों अनुमोरों की

न था और देखता था, तब उसने जो देखा ग्रीर जो जाना उसे वह दिखा मकता है। जो देखा था जाना नहीं होता वह दिखाया नहीं जा सकता-यह बात स्पष्ट हे। इस बात पर से ग्राप समभ सकेंगे कि यहाँ टीकाकार महींप ने जान तथा चरण रुपी जो दो नयन बताए हैं वे वित्कूल उपयुक्त ही है।

जिसे ज्ञान-चरण रूपी नयन युगल की प्राप्ति होती है. वह आन्तरिक ओर बाह्य दु खों से बचकर आन्तरिक और बाह्य सुख

प्राप्त करता है:

श्री भगवतीजी सूत्र, ज्ञान-चरम्। रूपी नयनयुगल के द्वारा जीव को किनर प्रवृत्त कर रहे है ? कहेगे कि जीव को मोक्ष की स्रार प्रवृत्त कर मोक्ष मे पहुँचाते हैं । श्री भगवतीजी सूत्र का यह नपन युगा ऐसा है कि जो कोई भी इस सूत्र को अच्छी तरह जात गके, यथाय स्पन्त में ह्यय में परिगात कर सके, उसे भी ज्ञान-चरण रपी नयनपुगत प्राप्त होता है। थी। भगवतीजी सूत्र का शान-चर्गा रती नयरपूर्व द्वारा-ज्ञान चरग् रपी नयनपूर्व वाता वनकर यह भी र नगण, मांध में पहुँच भागा है। ज्ञान चरमा रूपी नयनपुगत द्वारा मात्र में गरेनना ही जान चरमा रूपी। नयनयुगत की प्राप्ति ही परम पत्र रे, परस्य उसने पहित्र भी जीत की भान-वरमा रापी नगर रुदा भी द्रारित से बहुब साम हाता है। ज्ञान चरसा रूपी नम्बन कु असे देखी गाला, विराध्य पाता, प्रवत करने बाजा, पब्ना बना इन्त नेत्र प्रार्थामा नया बाह्य दोती प्रकार के दूरती में निर्ध ारा हेलया ना लीटक गत यात्य-उभय प्रकार के सुरता यो प्राप्त र रोग ता सार हो है। जार-परमा राजि नगरपाल जिस जीव की के जिल्ला कार्य कर कार्य का कार्य के जिल्ला के कार्य क

सामग्री को प्राप्त करता है तो वह उसमे ग्रासक्त नहीं होता ग्रांर उसका वैराग्य प्रवल बनता है। इस प्रकार ससार में भी जहाँ तक रहना पढ़ें वहां तक बाह्य ग्रीर ग्रान्तिरक सुख की प्राप्ति होती है ग्रीर परिएगम स्वरूप मोक्ष सुख की प्राप्ति तो होती ही है। ज्ञान चरणस्पी नयनयुगल को प्राप्त करने का यह फल है। वह जीव स्वय तो उस फल को प्राप्त करता ही है, परन्तु उस जीव से ग्रन्य जोवों का भी काफी दुख दूर हो जाता है ग्रीर ग्रनन्य जीवों को भी काफी सुस प्राप्त होता है।

ज्ञान-चरण का कार्य कारण संबंध .

इस धी भगवतीजी सूत्र में ज्ञान और नरसा उभय का निरु पगा है। यह श्री भगवतीजी सूग इस प्रकार ज्ञानदान करता है नि वस्तम्बम्प ना ज्ञान भी हो स्रोर नरमा की प्रोरमा। एव प्रवृत्ति भी प्राप्त हो। जो शानदान ऐसा नहीं होता, पह शानदान वस्तुन शान दान भी नहीं। जो ज्ञान चरमा प्रयात् चारित्य को सीच ताए, उमे ही सच्चा ज्ञान एडते है। जिस ज्ञान में नारिच्य की आकर्षित करने वा सामध्यं नही, वह ज्ञान यस्तृत तो ज्ञान ही नहीं। चारित्र्य गो ताने है समक्षी रहित ज्ञान तो निपुतिये वे समान है। जहाँ सचना एक होता है, पहाँ वारिका का भाग अवस्थ होता है। चारिका के भार का भनान भीर ज्ञान ।। सद्भाय थे दानो एक साथ संभाग ाने नानी (स्पूर्ण नहीं। नारिका है भाव ना रहि। ज्ञान स्रज्ञान है र स्मारि रणस्पन है। ज्ञान के साथ चारित्य का ऐसा सम्बन्ध होते राजी ज्ञान प्रसाधी यहाँ जो नयनपुगन की उपमा दी गई है, यह र पोर है। हो ते है। यान धार वारित्रा रा पन्ते हुई भी सम्सन् र केंद्र तो ता लो यह द्वमा मा देश ही नहीं होता, परन्तु यह ती र मार्था । यो संस्थात । स्थित यो यान है। सम्यासन जैसे सम्या क रेडरम है कर तात कीर परमध्यामा की संपाद मीन सामा है और

सामग्री को प्राप्त करता हैं तो वह उसमे ग्रासक्त नहीं होता और उसका वैराग्य प्रवल बनता है। इस प्रकार ससार में भी जहाँ तक रहना पढ़ें वहा तक बाह्य ग्रीर ग्रान्तरिक सुख की प्राप्ति होती है ग्रीर परिएगम स्वरूप मोक्ष सुख की प्राप्ति तो होती ही है। ज्ञान चरगरूपी नयनयुगल को प्राप्त करने का यह फल है। वह जीव स्वय तो इस फल को प्राप्त करता ही है, परन्तु उस जीव से ग्रन्य जोवों का भी काफी दुख दूर हो जाता है ग्रीर ग्रनन्य जीवों को भी काफी सुस प्राप्त होता है।

त्तान-चरण का कार्य कारण शंबंध .

इस थी भगवतीजी सूत्र मे ज्ञान श्रीर नररा उभय का निरु पग है। यह श्री भगवतीजी मूत्र इस प्रकार ज्ञानदान करता है कि तत्वस्यमप ना ज्ञान भी हो और चरण की प्रोरणा एव प्रवृत्ति भी प्राप्त हो। जो ज्ञानदान ऐसा नहो होता, जह ज्ञानदान वस्तुत ज्ञान दान टी नहीं। जो झान चरमा प्रयान चारित्रय को स्वीच लाए, उसे ही सरना ज्ञान कहते हैं। जिस ज्ञान में नारित्य की स्राक्तित क^{रने} या गामध्यं नही, वह ज्ञान तस्तृत ता ज्ञान ही नही। नारित्र्य गी लाने है रुमध्ये रहित ज्ञान तो निपूनिये के समान है। जहाँ सच्या रात रोता है, पर्ध चारित्र्य हा भाष-प्रतस्य होता है। चारित्र्य के मण रा सभाव गोर जान हा सब्भाव में दानी एक साथ सभव रोते ना भित्रतूएँ नहीं। चारित्र्य के भाव से रहित ज्ञान स्रज्ञान है पर प मिन्यानान है। झान में साथ पारिष्य का ऐसा सम्बन्ध हीते मा ही यान चरण हो यहां तो नयनयूगल की उपमां दी गई है, यह मार के किए हिंती है। जान प्रीर चारित्र का गाँद कुछ भी समान् र में क्या राज्यों का उस्मा माध्य ही नहीं होता, परस्तु यह सी र रणकार कोल र र वह सारित्य की यात है। सम्परतान औरी सम्पर रिक्ट र कराव की प्रमास में भी धारण सीच साता है मीर



की कमाई को समभते हैं, उन्हें उस हिंट से भी ऐसा विचार स्राता है, परन्तु यह विचार ग्रावश्यक है इसमे कोई इनकार नहीं कर सकता। ग्रापका लड़का यदि पढा हुआ हो परन्तु गुना न हो तो श्रापको दुख लगता है और श्रापका लडका पढ़ा लिखा हो, चतुर हो, परन्तु यदि वह कमाने की ग्रोर घ्यान न देता हो, तो उससे ग्रापको ग्रधिक दुल हःता है। ग्ररे। लडका पढालिखा कम हो। परन्तू यदि वह कमाई की ओर लक्ष्य देकर अच्छी कमाई कर लाना हो, तो वहआपको प्रिय लगता है और ऐसा होता है कि यह लडकाबिना पढे लिरो भी कितना ग्रधिक ग्रन्छा है ? यदि यह लडका ग्रधिक पढा लिया होता ती कितना अच्छा होता? 'ऐसा आपको होता है न? इस पर से प्राप सरलापूर्वक समक्त गए होगे कि ज्ञान और चारित्र्य ना कितना निकट और कितना आवश्यक सबध है ? अत ऐसा जो गमभता है. यह प्रकेले ज्ञान को महत्ता दे भला? चारिष्य की धावश्यकता को लांचे भला ? नहीं, कदापि नहीं। वह तो कहेगा कि भान गनना वह है जो नारित्र्य का लाए और चारित्र्य यथार्थ वही है जो ऐसे शान के उपार्जन हेतु जीव की बहुत २ उत्साहित बनाए। टी हाकार महींप ने ज्ञान और चरमा को नमनयुगन की जो उपमा दी है वह जिननी उपयुक्त है-यह बात ग्राप समभे-दसों का मह उदारसम् है।

तुम्हारे जानने में धूत गिरीः

पर मेड भी बाद की आप आपने मुनी होगी। उसकी भीरत मो भी में गंग गहना पटा रिवहों हैं कि -

जानूँ विकासरे रियन सी रो सते पूर

तव भी सेठ ने तो उसका मुँह बन्द करते हुए कहा - मै जानता हैं परन्तु सेठ उठा नहीं।

वे चोर उस गठरी को उठा कर घर से वाहर निकलने लगे कि सेठानी ने पुनः सठ से कहा कि ये तो उठा कर चले।

सैठ ने कहा-'मै जानता है।'

सेठानी श्रीरत जाति की। डरपोक भी थी श्रीर निर्वल भी थी। उमनिये चोरो को वह रोक न सकी, परन्तु उसका कोध बहुत बढ़ गया। जैसे ही चोर घर मे बाहर निकल पड़े कि मेठानी ने सेठ को जोर से कहा-'चोर तो सब कुछ उठाकर चलते बने।'

तव भी सेठ कहता है 'मै जानता है ।'

तव मेठानी को कहना पटा कि तुम्हारा जानना धूल मे गया जानना हैं. जानता है-कहते रहे, परन्तु बचाव तो कुछ भी न कर गके। ऐने जानने पर तो धूल ही गिरेगी या और कुछ ?'

जानकार तुटता है तो उसे अधिक दु.घ होतः है:

इन बात में तो आप भी कर्ग कि मैठानी ने मैठ हो जो कुट भी घटा पर उतित हो कहा है। जानने पर ननाया जा महता या जिर भी पाने हा प्रवन्त नहीं किया , उस्तिय न रै निलाय क्रिति हो और जाउने हो भी प्रवास में मेरे यह मिन्न तात है। प्रवन्त हैने समूख के हो हाए। में हमा होना १ र तमे समय में प्रवन्त के कि सम देश जान हार हो होता है।

अग्रहार्ट भीत

हुए, परस्पर संवादात्मक वर्णन भी किया गया है। इसका ताल्प इतना ही है कि जितनी स्नावश्यकता स्रीर महत्ता ज्ञान की है, उतनी ही आवश्यकता और महत्ता चरण की है। न तो ज्ञान के विना चन सकता है न चरण के विना चल सकता है। काई कहेगा कि इन दोनों में प्रधान कीन ? तो कहना पड़ेगा कि दोनों ही अपनी २ अपेक्षा से प्रधान है। किसी जीव विशेष के लिये ज्ञान चरण का कारण होता है, तो किसी जीव के लिये चरण ज्ञान का कारण बनता है। मोक्ष मार्ग का निरुपए। करते हुए, किसी ने भी मात्र ज्ञान से मुक्ति नहीं कहा ग्रीर न किसी ने मात्र चरण से मुक्ति कहा है। ज्ञान चरण के योग से हो मुक्ति कहा है। फिर किसी जीव मे ज्ञान प्रधान रूप मे मृक्ति साधक होता है ग्रीर श्रमुक जीव मे चरण प्रधान रूप से मृक्ति साधक होता है, परन्तु ज्ञान यदि चरण से सर्वया निरपेक्ष होतो वह ज्ञान भी मुक्ति साधक नहीं बन सकता और चरण भी यदि ज्ञान से मर्वया निरपेक्ष हो तो वह, चरण भी मृक्ति साधक नही वन सकता। ज्ञान को मुक्ति साधक बनने के लिए चरमा की अपेक्षा रसनी पणती है। प्रोर चरगा को मुक्ति साधक बनने के तिये ज्ञान की अपेक्षा रगनी पानी है। परस्पर प्राश्रित बन कर दोनो मुक्ति के सामन यन नवने है प्रार परस्पर आश्रय छोड़ कर दोनों में में एक भी मुिक पा सापन नहीं यन सकते। इमीलिए ज्ञानी के मन में चररा की मण्ला होती है और वरण वाते के मन में ज्ञान की महत्ता होती है। मित्र ग्रानी या नारिश्यो एक दूसरे ही उपेक्षा करने तमे, ना दोनी ही दूवने हैं परन्तु दोनों में से एक भी निस्तार प्राप्त नहीं कर 11211

त्तान अप्रतिपानिक गुण:

ज्यात विभाग प्रयान है। मिनिशान, श्रेत्यान, श्रापिशान स्त ति हता को रचे वा ज्यान में इन पांच भित्रों से बार होनस्स है। दर्ग

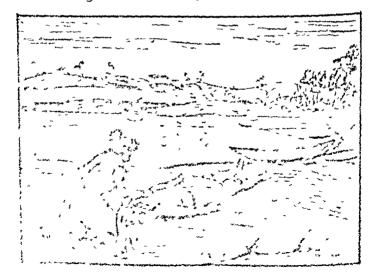
ज्ञान चरण दोनों में रहें:

किसी भी वस्तु की प्राप्ति ज्ञान मात्र से नही होती। वस्तु का ज्ञान चाहिये, वस्तु प्राप्ति के उपाय का ज्ञान चाहिये, परन्तु उसे प्राप्त करने के प्रयत्न रूपा चरगा की भी मावश्यकता है। भोजन के ज्ञात मान से भोजन तैयार नहीं हो जाता, खाने के ज्ञान मात्र से भूख नी का शमन होता नहीं, चलने अथवा मार्ग के ज्ञान मात्र से इच्छे स्थल पर पहुँचा नही जाता, और व्यापार के ज्ञानसात्र से कमाई होती नहीं। सविधत ज्ञान की सफलता तत्सवाधी ज्ञान के अनुसार की जान वाली किया मे ही होती है। इसी प्रकार मोक्ष रूपी स्थान पर पहुँ नते के लिए मात्र ज्ञान से ही नहीं चलता, परन्तु किया भी होनी नाहिंग किया विहीन ज्ञान की सच्ची कीमत नहीं आ सकती। केवन ज्ञान होने के पश्चात् भा जब सर्व सबर नामक क्रिया श्राही है तभी मोक्ष होता है। वेनल ज्ञान होने के पश्नात् भी कदाचित् न्यून पूर्व कोटि वर्षों तक भी जीव को ससार मे रहता पड़े—ऐसा भी होना है, जब सर्व साबर नामक चर्ण माता है, तब ती नियम पूर्व में पाँच ह्रम्बासरके उच्चारण में जितना मगय लगता है जतने नाल में मुक्ति हा ही जाती है। केवल ज्ञान प्रकट हुए बिन मर्व रावर रापी चारिच्य नहीं ग्रा सकता, परन्तु यथारयात चारिज्य ी विना केवल जान भी प्राट नहीं हो सकता। यशिष यह बात भी याद रहनी नाहिये कि मन रावर नरमा का कार्सा केवल ज्ञान शारी पर तो प्राप्त हो सकता है। ये सब बाते इसीतिये है ताकि जान प्रीर चन्या भी प्रावण्यवना और महत्ता समभः में आए। जीव गी गर्दि श्रप्ता सरवा रायाम करना हो तो ज्ञान और नरमा उभा न गें पर भी स्थापन करता है। जिसा होन आन और आन गरित हिंद देश हैं। एक १७ १ । इसमें विज्ञाना नहीं ने महा है। जानवरण्यों क्य क्षा व सम् राधा ज्ञान मोक नरमा लाना से काना पास्ति।

का मदाग्रह ज्ञानी नहीं करेगा तो कौन करेगा ' ऐसा ज्ञानी जो मित्त्रया का समर्थक नहीं जो चारित्र्य हीन के ज्ञान का कोई महत्व हों नहीं, परन्तु उससे उसकी और अन्य अनेको की हानि है।

दोनो की प्रधानता लगे।

छत्तीस प्रकार की रसोई के नाम जानने वाला और वत्तीस प्रकार के मागों के नाम जानने वाला यह मंग्र उसकी थाली में परामां जाने पर भी यदि उन्हें मग्त्र गिनता ही रहे और कीर लेकर गुँह में रते नहीं तो उमें उनका स्वाद आएगा क्या? उसका पेट भरेगा क्या! यालक भले ही नाम न जानता हो, परन्तु वह खाता है और उसे उसका स्वाद लगना है। इसी प्रकार ज्ञान भले ही कम हो परन्तु नारिया का गुद्र पालन हो नो वह स्वाद भिन्न ही होता है। एक





माणय से की गई किया से ही दुख की प्राप्ति होती है-ऐता क्यो? अज्ञानतावण । सुख कहाँ और कैसे इस वात का ज्ञान नहीं इसी-निये! मुर्ख व्यक्ति ही किया का विरोध करता है। किया करने वाना श्रीर किया से ही जीवित रहने वाला यदि समभदार हो, तो भला कियाका विरोध करेभी ? हाँ समभत्वार व्यक्ति गलत कियाका विरोध ग्रवण्य करेगा। जो किया पापमय हो, पापजनक हो ग्रीर दु व देने वाली हा उस किया का विरोध करेगा ग्रौर कहेगा कि सस के लिये तो प्रमुक ग्रमुक किया ग्रमुक ग्रमुक विवि से करनी चाहिये। मत यह विरोध किया का नहीं, परन्तु ज्ञान के ग्रभाव का है, प्रज्ञान का है। ज्ञानी कहते है कि श्राप लोग मुख के लिये किया तो करते ही है परन्तु नमफ पूर्वक करने योग्य किया करे । ज्ञान ग्रीर किया से मोक'— उस प्रकार मोक्ष के उपाय का निरूपण करते हुए ज्ञान को प्रथम स्थान दिया, क्योंकि सम्यक्तान के विना सम्यक् किया नहीं आती प्रोर केवल शान हुए विना सर्व सबर की त्रिया नही क्राती। परना निया हो जान के बाद रसाहर भी ज्ञानीजनो ने एक महत्वपूर्ण म ग्वा यह दी है कि जिसे जान मिले उसे फियाशील ननाने का लक्षा रराना ही पाहिये। जो ज्ञानी त्रियाशील बनेगा वह निरेगा। ज्ञान हा फार रिमे पारत रहना होगा उसे कियाणीय बनना ही होगा । कोई भी जागी रिसी भी प्रकार की सतिकता के बिना केवल जान या मुक्ति ो प्राप्त नहीं कर सकत । प्रत ज्ञान में तिया की गौगा बनांकर रिया का महला को बहा दी है, नेपोरि मोक्ष हवी फन जान सहित तिया हाने मही पाद्य होगा। ऐसा इसमें निवेंग है। समार में जीव िपाजीत सो देशी परस्तु वे सान के पोग में ही सहितपाणीत यस रात्र है पत शान की बर्गम समात्र दिया है। मिलियाणील अर्थात् राज र त्यो राजाना की समझे, परन्तू जो सम्यस्तान पुरेश सत् िया वा राजी वर्ती पर्वास स्पर्ध महिल्लाकील है। भाग और भिष्या की संवेशा :

नाइ रहता है हि. जा माई जीन जिया करता है, यह महस्र

अर्घ पुद्गलपरावर्त काल से भी अल्प काल मे सम्यक्चारित्रय की प्राप्ति अवस्य करवाता है। जो किया प्रत्यक्ष रूप मे सत्किया भी हो परन्तु यदि वह सम्यग्जानपूर्वक न हो, तो वह किया सम्यग्ज्ञान को अवश्य दिलवाए-ऐसा नहीं कहा जा सकता। फिर भी सत्किया सम्यग् ज्ञान प्राप्ति मे कारएा न वने-ऐसी बात भी नहीं है। सित्क्या सम्पक् ज्ञान प्राप्ति मे कारए। बने ऐसी बात भी नहीं है। सित्कया सम्यम्ज्ञान प्राप्ति मे, वृद्धि मे श्रोर स्थाई बनाए रखने मे वड़ी सहायक होती है। साय ही सर्तित्या देखने से लघुकर्मी भद्रिक जीव अनुमोदन कर मोश मार्ग की प्राप्ति का बीज अपने अन्त करगा में बोते हैं। बालजीवों को धम की स्रोर श्राकृष्ट करने में सदाचार पहिला हेतु है । चरित्रहीन ज्ञानी निन्दा पात्र होता है परन्तु ज्ञानरहित चारित्र्य वाला निन्दा पात्र नहीं होता। ज्ञान गुरा भी सच्चा परोपकार तभी वन सकता है जब वह नारित्र्यगुरा युक्त हो । नारित्र्यगुरा युक्त ज्ञान गुरा प्रगनी महत्ता को भीर परोपकारिता को सुन्दर ह ग से भिद्र कर सकता है। अत ज्ञान मौर चारित्र्य दोनों की स्रावण्यकता है स्रोर वे भी नम्यम् प्रकार के होने चाहिये।

समझ सच्ची चाहिये और व्रिया मी बच्छी होनी चाहिये:

समभ्य गण्यो न हो भीर उन्हीं समभ्य हो, तो ग्रहणी विया भी ऐसी होती है कि यह तारक बनने के बताय सारक तनती है।

एक नात्राधानी बीमार पिना के जिए ववाई नेने हेत्र रेण ते जार गया। धेंग को उसने अपने विचा का शीमारी की मारी बात गर गर्म ई । बेंग ने एक जामान पर प्राया निष्य की चीर तह तथा । उस राज्ये मो पन हुए कहा कि पह देशाई स्वस्त में पानी के साथ काह कर अंग है।

पिता की बीमारी इस प्रकार वह गई, तव उस वैद्य की घर बुलाया। वैद्य के आते ही उस लडके ने कहा-'आपके द्वारा दी गई दवाई देने के पश्चात तो मेरे पिता का रोग ग्रीर-अधिक बढ गया।

वेद्य को जरा बहम हुआ। उसने पूछा--'दवाई लाने मे तो कोई गलती न हो गई ? क्यों कि उसे विश्वास था कि वह दवाई करे तो लाभ ही करती है।

वह लडका कहता है कि 'दवाई ग्रन्यत्र कही से लाया ही नहीं, आपके वहीं से दवाई लाया था और दवाई आपके कहने के अनुसार खरल में घोट कर मैंने तुरन्त पिलादी थी।

वैद्य ने कहा-मैंने तो दवाई दी ही न थी, परन्तु दवाई तिसी ही थी। यह दवाई बाजार में से ठानी थी तो फिर तेरे पिता को तुने पिलाया नया या ?

लडका बीला—भैने तो आपने जो दिया था वही घीट कर विला दिया।'

वैद्य ने कहा-मूर्त । दवाई के बजाय दवाई तिसा हुम्रा कागः ही घोटकर पिला दिया, फिर बीमारी बढ़ेगी नहीं तो होगा भी त्या

फिर वैदा ने स्वय ही उपचार कर उसके पिता को बीमारी रे वका विद्या ।

वहने का मन्द्रत यह है कि समक्त यदि सकती ने हो श्रीर इन्द्री हो सो ऐसा परिग्णाम भी था सकता है। अत सच्ची समक्र के राप रुल्किय का योग मिले सो मोज सथ सकता है।

राष्ट्रमा गरमाण भाव-मेज से ही होता है : अंगणहर महाचिन लग भन्ना में नयनगुपा की उपना ले है. अर कार परक्त के कार्रिक का ब्रोड कार्य की ज्ञार के कार्ड किसीन

न्याध्य है। ग्राज जगत में कितनी अन्धेर गिर्दी चल रही है ? एक दूनरे का नाश कर कैसा भयकर अत्याचार फैल रहा है ? अपनी ग्राशाओं की परितृष्ति हेतु दूसरों को ग्रसीम हानि पहुँचाकर इन्सान् नियत का वारों ग्रीर नीलाम बोला जा रहा है। यह सब क्यों ? ग्रथवा इस ससार में छोटा या बडा जो कोई भी दु ख है, वह क्यों हैं ? भाव नेत्र के ग्रभाव से। भाव नेत्र के पास द्रव्य नेत्र की कीमत नहिवत है।

भावनेत्र-यज्ञ :

यह श्री भगवतीजी सूत्र का जो श्रवण करवाया जाता है वह भाव नेत्र यज्ञ है। इस सूत्र के श्रवण से मिध्यात्व की लगी हुई मसी नता दूर हो और अविरति की दीमक का नाश हो अर्थात, शर्म चर्गा रूपी नयन युगल प्राप्त हो । जाम हुए पटल दूर न हो, पपडी पूरी रक्त-मास की गाँठ न कटे, तब तक नेत्र मात्र पीडा प्राप्त करते के लिए ही है। यह दूर होतो पीटा जाए श्रीर प्रकाश प्राप्त हो, जिन् प्रमोद हो, देराने को मिले, अन्धत्व दूर हो, इच्छित फलित हो। इस प्रकार भाव नेत्र अर्थात् ज्ञान-चररा रूपी नयन युगल की प्राप्त करने हेतु मिश्यात्व ग्रोर ग्रविरति इन दो पर प्रहार करना चाहिए। 🦰 दो पर प्रहार करने हेतु कपायो पर आक्रमण, करना चाहिसँ। भी भगानीजी मूरा ना श्रवण करवाना, ऐसा ब्राक्मण करने के ममा^ह है। उसीतिये यह भाग नेत्र यश है। ग्रांप जितना लाभ उठाते हैं उतना प्रापी निष्युत् यज्ञ फलीभून हम्रा कहा जायगा । श्रत मापा निर्माप राज्या चारिये कि अब हमें भान चन्सा क्या समा नगनगुगत बाना वनसारी गोर इस निर्माय पर प्रमुमरमा पर प्रापता प्रपने मन न^{ान} राज्य के वर्षन को घोट देना चाहिये। प्राप्त सब मन्दि प्रपत्ते मन*्तान* राष्ट्रा के बहुत की मोट देशर आने और सरमा राति नयनपूर्ण गाँव ण्यने का प्रपतन रव द ना इस भाव रेज सज के प्रशि भागनाया। वर राष्ट्रामे कार्यक्ष इत रिवा को वर्ष ।



श्रंशों में सच्चा कहा है ग्रोर सभी सत्याशों को निरागह पूर्वक स्वी कार कर, स्वय ने एकान्त रूप से सत्यवादी होना सिद्ध किया है। वैसे किसी को भी मिथ्या नहीं कहा और वैसे सभी को मिथ्या वताया है। मिथ्या न कहने मे आणिक सत्य का कारएा है ग्रीर मिथ्या कह^{ने} मे प्राणिक सत्य का कारण है श्रीर मिध्या कहने मे इस श्राणिक नत्य का ऐसा दुराग्रह है कि ग्रन्य नर्व सत्याशो का निपेध-यह कारण है। इस सम्बन्ध में अन्य सर्व दर्शनों में विडम्बना है। अन्य दर्शन जब ग्रपनी-ग्रपनी तत्व स्वरूप सम्बन्धी मान्यता का प्रतिपादन मात्र करते हों, तब हमे लगता है कि यह बात तो भगवात श्री जिनेश्वर देवों ने भी इसी प्रकार कही है. परन्तु जहाँ ये दर्जन अपनी-अपनी मान्यता स पर ऐसी सारी मान्यतात्रों को अस्वीकार कर उनका सर्वथा अभाग ही निद्व करने लगते है, कि वे महा मृपावादी वन जाते हैं। इसी कदा यह के कारण इनका जो ग्राणिक मत्य होता है, वह भी असत्य की श्रेगी में चला जाता है। श्री जैन शामन में ऐसा कभी भी नहीं हाता। जिस अपेका का वर्रोन चरता हो उस अपेक्षा का वर्रोन न रता है, परन्तु प्रन्य प्रपेकान्रो का सर्वया निषेत्र नही करता। इसम श्री जैन पासन में सारे ही नप बात्यों को सच्चे ही कहते हे पौर अन्य दर्शना के सारे हो वास्य मिथ्या कहलाते है।

द्रव्यास्तिक और पर्यायास्तिक

किसे कहते हैं ?

ग्रत पितने बमसो के माग जतने ही नय'-ऐगा कहने पर
भी नहां सी नवों की बात मही पर मां नवों की भी बात मही
भार सार रहें की हान भी को उनसे परेवान होंगे जिपा नहीं
वार स्वीट किसे ने साम लेका के दूसरे नयों का निवेष कि है

पर होंगे हैं किसे ने साम लेका निवेष किसे में

पर होंगे हैं से एक दनर में समावेश हा प्राप्त है बहु नहीं
के के सर्वाहर है कहें नहीं

जा सकता है। इसी प्रकार ऐसे श्रवण से किसी भी बात को ग्र⁹द्धा पूर्वक सम्भने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। इसमे से तो साधुता और सिद्धि की भी प्राप्ति होती हे। तात्पर्य यह है कि इस महत्वपूर्ण ज्ञानामृतपान की रुचि बढाएँ ग्रीर जीवन को सार्थक बनाने का सामर्थ्य प्राप्त करे।

नयवाक्य मिथ्यावाक्य ही—

ऐसा नहीं कहा जा सकता :

हम चर्चा तो यह कर रहे थे कि भगवान ने प्रत्येक पदार्थ की द्रव्यास्तिक नय से तथा पर्यायास्तिक नय से जानने और मानने की निर्देश दिया है। इस बात को आह्ना द्रव्य की अपेक्षा से आप मोचे जिसमे ग्राप मरलता पूर्वक यह वात समक्त सकेंगे । प्रत्येक ग्रातमा यमर है यह तो ग्राप जानते है न ? प्राणो का वियोग होता है मृत्यु हुई ऐसा बहते हैं, फिर भी ब्रात्मा तो मरती ही नहीं है। चाहै जैसे हो तब भी ग्रात्म द्रव्य तो विद्यमान ही रहता है। यह हुई द्रभ्यास्तिक नय की वार्ता आत्मा के अमरत्व की स्वीकार करते हुए भी ऐसा कोई नकार नहीं सकता कि ज म-मरणादि होते हैं, नर्नुः र्गति मे परिश्रमण होते है। यह सब पर्यागास्तिक नय की मानने से निक्र हो मकता है। देव गति में भी यही ब्रात्मा और नरकादि गति में भी यही प्रात्मा फिर भी यह देव, नारक ग्रादि भी कहताती हैं इस प्रशार दानो नगो का मेन सधना है। जो स्नात्म न्यान्य से िम्पा पन्तर पृत्यत में आवन्द मनाने हैं, ने भर में नाचते हैं, भटें-व ते है परिश्रममा करते हैं। दिया की कठिनाई से उर कर मिलिया स दूर रहते पारे तथा सामारिक शहर तमाम तिपाप्रा को वज्ये काल को तिया को भग भग भटकता गए । है। इसमें ये अभी-कभी चलः वर्गा ने कारण पुत्रवेषार्यन भी करते हैं और प्रतर्मी वे सारगी राव कर उत्तर र पर पाँच बरावा हा रहता है। इस प्रशाह गंगार में

१६: निश्चय-व्यवहार

दो गण्डस्थल:

श्रगले विशेषण में भी नय की ही बात आती है। समुश्रत जयकु जर के साथ श्री भगवतीजी सूत्र की तुलना करते हुए टीकाकार महींप श्राचार्य भगवान श्रीमद् अभयदेव मूरीण्वरजी महा राजा, चौदहवे विशेषण के रूप में फरमाते हैं कि—

'निश्चय व्यवहार नयसमुन्नतकुम्भद्वयस्य'

प्रमान् जयकुंजर के जैसे समुझत दो गण्डम्थल होते हैं, उसी प्रकार यह श्री भगवतीजी सूत्र भी निण्चय नय तथा व्यवहार नय रूपी दो गण्डम्थलों से युक्त है।

निश्चय गय और व्यवहार नय:

निश्यम सम और व्यवहार सम इन हो समो के भी विशेष बर्गन में न एक एक, प्रापको सरपनापूर्वक समझ में स्नाम ऐसी काला परेवा । सृतिस्थित समाप्तिपूर्व कार्य देशा को मान्या। की भी विशिष्ट वद है, जब कि व्यवहार सम हो कारण की प्रति-की अला है। एक उद्यवहार हो सामारा का में स्नाव जानते हैं

एक रस्मी को ढीली छोड़ कर दूसरी रस्सी खीची जाती है, परन्तु दोनो छोर हाथ मे ही रहने चाहिये। एक भी छोर यदि हाथ में से छूट जाय तो मथानी का घूमना रुक जाता है। इसी प्रकार निश्वय या व्यवहार एक को भी छोड़कर कल्याएा सिद्धि नहीं हो सकती। दोनो को साथ रखने पर केवल ज्ञान रूपी मक्खन प्राप्त होता है।

च्यवहार से वंचित रहने वाला ठगा जाता है : यह पचमाग श्री भगवतीजी सूत्र भी निश्चय श्रीर व्यवहार नय को लेकर चल रहा है। श्री वीतराग परमात्मा के शासन में सारे ही शास्त्र, दोनो नयो के आधार पर चल रहे है। अकेले निश्चय नय को पकड रखने वाले अपने आप को अध्यातमी बताकर मोक्ष किया है विचत रहते हैं। यदि वे सभी कियाओं से वंचित रहते होते तव तो भिन्न प्रश्न होता, परन्तु ये वेचारे तो तारक कियाग्रो से ही विचत रहते हैं मात्र धर्म कियाओं में धर्म कियाओं के न्यवहार में ही वे न्यवहार ने रहते हैं, वरना तो न्यवहार के विना उनका न्यवहार चलता ही कही है पाने पीने, पहिनने ओढने ग्रादि पौद्गलिक भोगोपभोग सम्बन्धी व्यवहार को जारी रसकर वे श्रपने श्राप को व्यवहार रहित कहलवाते है। ऐसी सभी कियाएँ करे ग्रीर धर्म कियाओं में ग्रखाड़े करे ती इमका अर्थ वया ! इसका अर्थ है अनर्थ । प्रमाद की पीडा का ही यह एक प्रकार है। जहां तक देह से संवधित व्यवहार नहीं टूटता नहीं नक भारमा भादि आत्म हितकारी किया के व्यवहार से वनित रहे^{ती} है, नो यह ठगी हो जाती हैं। जहाँ तक बाह्य साथ तगा हुमा है, ^{तुब} तक भारमहितकार धर्म व्यवहार की भ्रवश्य भ्रावश्यकता रहती है। बाग वजा हटो को ब्ययहार रचत ही म्क जाता है, परन्तु तब ती भमें रपयहार में भटकने वाला स्वयं लटकता है। मिछावस्या की प्राप्त गरने के परचान् से बाहरी प्रालंबन नहीं ग्रीर इसलिये न रत्त्रशर में ही है, परन्यु दगुरे पहिले हमतहार की खोउने की बात करन अतिन्यमें व्यवहाँद भी भावस्थाता नहीं ऐसे निश्चयवारी

			,
			1

ही नहीं है। सम्यग्ज्ञान के अभाव में निश्चय होता है पर पौद्गलिक सुख की रमणाना का। यह निश्चय गुद्ध ब्यवहार का बाह्य रूप से आचरण करने देता है, परन्तु अन्तरतम को तो वह मलीन ही बनाता रहता है। अशुद्ध व्यवहार के लिए शुद्ध व्यवहार वस्तुत शुद्ध व्यव-हार ही नहीं। शुद्ध व्यवहार ग्रान्तिरक ग्रीर बाह्य गुद्धि के लिए ही चाहिये। यह निश्चय के विना सभव नहीं। वेचारा ग्रभव्य व्यवहार निप्णात होने पर भी तिरता नहीं क्योंकि उसमें निण्चय का अभाव होता है।

व्यवहार शिववीज भी बनता है और भववीज भी बनता है

निश्चय की उपेक्षा करने वाले स्रोर व्यवहार में ही सर्वस्व गो स्थापित करने वाले भी महान् अज्ञानी ही है। कहा है कि—

'च्यवहार प्रतिमासो दुर्गोयकृतवालीशस्य भवबीज, व्यवहार चरगं पुनरनिमनिविष्टस्य शिवबीजम् ।'

व्यवहार का प्रतिभास समार का बीज बनता है । व्यवहार का प्रतिभास प्रधान् मात्र व्यवहार का ही पोपए। करने मे आए ऐसा व्यवहार, वह मगार का बीज हो जाता है। व्यवहार का प्रानरण हो, परन्तु यदि जमी का जागह न हो तो यही व्यमहार णिव बीज वन जाना है। ना-पर्य यह है कि व्यवहार या निश्चय किसी एक है भी गदाग्री न बनना चाहिये। जहाँ तक कार्य न हो, परिपूर्ण फन न नित, तय ना कारमा से निष्के रहना चाहिये न अर्थात् व्यवहार मां निपक्ता तो मात्रपक है ही, परन्तु व्यवहार को जो मापन नगन, सर निराम हो, यह निम्त्य की-साथन की भीय में ही रहता है कार इसहा राष्ट्रार तो निसने तालाही सित होता है। में हा ोंग सामा के अवहार को चर्ना कर रहा है जा निकास की और में हो। भीर मात्र अवतार है ही कदापती है। ऐसी का क्वादार उनके िर रापर मा भी र रन्ता है। व अपाठ रहित स्वति के विवे सनी भारत होता होता जा रहा। है। जिस बीज यन सी ऐसा भी



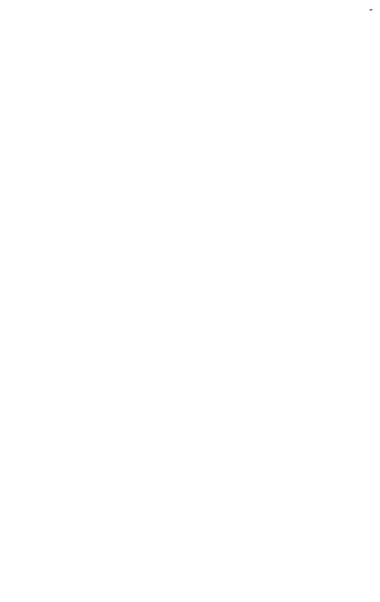
श्रन्य प्रति मे प्राप्त होता है। उसमे से लेकर ही यहाँ हम इस विजयण के सर्वंच मे विचार करते है।

नाथ वे जो योग-क्षेम करे:

लोक नाथ की व्याख्या करते समय महापुरुष फरमाते हैं कि जगत के जोवो के योग प्रीर क्षेम को जो करने वाले होते है, उन्हें



नाथ करते हैं। दिनवारी वस्तु की प्रास्ति करताना 'योग' कहनात है और की दिकारी नरतु प्राप्त ही पत्ती ही जिसकी प्रास्ति करते की गई भे—उसका परियोगन करवाना 'येग' गहताता है। इस देवरण की प्राप्त परियोगन करवाना 'येग' गहताता है। इस कि का कि की गर्भ मोग परियोग नाथ है। क्याने प्राप्त की नाथ पहलाता पर्व कि का कि की की का की की का की नाथ पहलाता पर्व कि का कि की की की की की की की नाथ महास्तान की



जिनेश्वरदेवो का ही ग्राता है। जगत के जीव मात्र का कल्याए। करते वाले शासन की स्थापना तो मात्र इन्ही परम पुण्यशालियों से होती है। पौद्गलिक सुख के साधनों का योग कर श्रीर उसका रक्षण करने का प्रयत्न करके भी किसी भी जीव को सच्ची तरह से ग्रीर सब प्रकार ने दुःख से मुक्त नहीं किया जा सकता और उमसे संपूर्ण सुख उसे प्राप्त नहीं करवायां जा सकता है। इसके लिये तो मात्र मौक्ष का ही दान करना म्रावश्यक है। सच्चा नाथ, परम नाथ तो केवल मोक्ष का दान करने के लक्ष्य वाला ही होता है। दूसरे जो कोई दान वह करता है, वे भी मोझ हेत् से ही करता है, ग्रतः इन दोनो का समावेश भी मोक्ष दान मे ही होता है। जिसे मोक्ष मिलता है, उसकी सारा ही दु ख सदा के लिये मिट जाता है और वह सदा के लिये मम्पूर्ण कोटि का सुख पाने वाला बन जाता है। ऐसा दान, भगवान श्री जिनेरवर देव करते है। भगवान श्री जिनेएवर देव ऐसा दान स्तय ही करते हैं-ऐसा नही. परन्तु ऐसा दान करने का जो मार्ग है. उसे प्रवाहित करते है. कि जिस मार्ग के प्रताप से अनेकानेक प्रता जीय भी मोक्ष का दान करने वाले बनते है। इस प्रकार मोल का दान करने वाले नाथ के मुकाबले में ग्रन्य कोई भी नाथ नहीं ग्रा महते।

मोक्ष का दान उपदेश से ही होता है और उसके लिये सामने वाले जीव की पात्रता आदि आवश्यक है।

मोश का दान मोश का उपाय बताकर ही हो मकता है। किया भी पीरणीतक प्रमा की भीति मोश दिया नहीं जा मकता । जाप ही देप कि मनाव में निशादात की दिया जाता है। पढ़ाने गांगे और पत्ने नहीं के मुपोग से ही विज्ञादान हो मकता है गा दिया दी कही जानी परन्त् बचाई जाती है। इसे यह महने हैं और इसे कह कार्य है देश हम प्रशाद बचार ही दिश्व न किया गांगी है।

		,

रत्नत्रयो को प्राप्त करे और उसका पालन करे-ऐसे उपकार की सर्वोत्तमता

भव्य जगत के नाथ ऐसे भगवान भव्य जीवों को क्या प्राप्त करवाते है ग्रीर किसका परिपालन करते हैं ? भगवान भव्य जीवो को सम्यग्दर्गन, सम्यग्ज्ञान, ग्रीर सम्यक्चारित्र्य रूपी रतनत्रियी की प्राप्ति करवाते हैं ग्रीर उसी का परिपालन करते है । रत्नत्रग्री को प्राप्त कर सकने की योग्यता वाले जीव उसकी प्राप्त कर सके श्रीर उन्हे प्राप्त रत्नत्रयी का वे रक्षण कर सके, परिवालन कर सके- ऐसा ही उपदेश भगवान देते हैं । रतनवयी की प्राप्त कर सके तथा उसका पालन कर सके-ऐसा उपदेश देना-उसके समान इस जगत मे दूमरा कोई उपकार ही नहीं है। अन्य उपकार तो ग्रल्पकानीन भी होते है, उपकार होने न होने की उच्छा वाले भी होते है, परिगाम में अपकार मिद्ध होते वाले भी होते हैं, परन्तु रत्नवयी को प्राप्त कर मके ग्रीर उसका पालन कर गके-ऐमे उपदेश का दान रूपी जो उपकार है, वह उपकार ऐमे विगी भी दूपरा से दूपित नहीं हैं। इम उपकार को जी ग्रहमा कर मके पह इस लोक में भी मुखी होता है और उसका भवित्य चन्द्र की गटनी हुई कता की भाति उउज्यत होता जाता है। उसमे वह भूत तर गैंदे नो यह भिन्त प्रथन है, परन्तु उपकार में न्यूनता नहीं हैं। मानों कि ऐसे उपकार की स्वीकार करने के बाद जीव प्रमत्त वन जाय, भृत जाय पिसत जाम तब भी यह उपकार तो ऐसा है कि वह त्रीत पुन अत्य राज में ती रत्नत्रथी को प्राप्त तिये विना रहेगा गहीं ! एक बार जिसने यह उपनार प्राप्त विया, पकला, उसनी भीड़ा माध्यम्माधी समस्य ।

षान को जयमा उपमुक्त ही है :

इ. जार ने पोर्सा मिया प्रारंग हाना सिया है उस नारेग

कोई भी जीव रत्नत्रयी के मार्ग से अष्ट न वने-इस बात की जहें वड़ी भारी चिन्ता होती है। रत्नत्रयी से अष्ट होने वाले जीव पर तो वे करुणा के वादल वरसाते है थ्रौर इस जीव को रत्नत्रयी में सुस्थिर वनाने का प्रयत्न करते है। यह शासन गिरते हुए को या गिरे हुए को लात नहीं मारता, परन्तु गिरते हुए को सहारा देने



वाता है भीर गिरे हुए का उद्धार करने वाता है। नाथ गा काम वा काम वा काम नहीं है। यह पाण गरना नाथ का काम नहीं है। यह पाण गरना नाथ का काम नहीं है। यह पाण गरना नाथ का काम नाथ का कै। परमु कीई ता पाण के पत पर बढ़ जात ऐना करना नाथ का बाद नहीं है। महणूर भी भारत जात का मनाय यमान गां ही हो? भारत है। महणूर भी भारत जात का मनाय यमाय का महणा है। हो भारत है। महणूर की पाण पर महण्यों के समाय का सहणा है। के साथ का सहणा है। का साथ का सहणा है। का साथ का साथ का सहणा है। का साथ का



है—यही महत्वपूर्ण वात है। ग्रापको यदि रत्नत्रयी प्राप्त करने की इच्छा होगी, तो ग्राप इस श्री भगवतीजी सूत्र के योग क्षेमकर गुण का लाभ उठा सकेंगे, ग्रीर यदि वैसा होगा तो ग्राप ससार में रहेंगे तव तक भी अपने आश्रितों के सच्चे कल्यागा का प्रयत्न करने वाले वन सकेंगे।



सच्चा ग्रन्थकार जो प्रस्तावना करता है, उस प्रस्तावना पर दृढ रहें कर ही ग्रन्थ को श्रागे वढाता है। इस प्रकार प्रस्तावना को दी गई सूँढ की उपमा उपयुक्त ही है।

टीकाकार महिष ने मात्र सूँढ न कहकर प्रचण्ड सूँड कहा है। जयकुं जर की सूँड प्रचण्ड होती है। श्री भगवतीजी सूत्र की प्रस्तावना भी ऐसी प्रचण्ड है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ मे से एक भी बात को कोई मिश्या सिद्ध नहीं कर सकता। ऐसी वचन रचना से प्रस्तावना की गई है कि यह प्रस्तावना सूत्र की सत्यवादिता की सुरक्षिका वनी रह सकती है।



ग्रादि के रूप मे ग्रीर ग्रन्त मे उपसंहार भी ग्राता है न ? कई ऐसे हैं जिन्हें इस प्रकार विस्तृत प्रतिपादन करना तो ग्राता है, परत् उपसहार करना नहीं ग्राता। उपसहार तो ऐसा है जो ग्रन्थ के रहस्य को खोल डाले। पिछली सारी वातो को मन मे उपस्थित, करवा दे। श्री भगवतीजी सूत्र भी निगमन रहित नहीं, परत् निगमन युक्त है ग्रीर जो निगमन हे वह भी ग्रतुच्छ है। निगमन सुद्रता वाला नहीं, परन्तु गभीरता वाला है। परम उपकारी निगमन कैसा करते हैं वह तो उचित स्थान पर ही देखने को मिलता हैं। उपकारी जनो द्वारा रचित कथा ग्रन्थों में भी यह होता है, परन्तु यह वस्तु लक्ष्य में ग्राए-ऐमी हिन्द तो होनी चाहिये न? मनोरञ्जक कहानियों की बात विषेष रूप से पढ़ें, विशेष रूप से-याद, रसे ग्रीर धर्मकथा के निगमन को प्रायः पढ़ा न पढ़ा करते हैं, वयोकि उनमें रचि हैं ग्रीर इनमें नहीं हैं। ऐसी ही स्थित प्राय लगती हैं न? श्रापने यदि धर्मकथा के निगमन को भी ग्रच्छी तरह पढ़ा होता, तव भी ग्रापनो शासन के रहस्य का बहुत जान हुगा होता।

मधुविन्दु का हण्टान्तः

आपमें से कईयोने मधुबिन्दु की कथा पढ़ी या सुनी होगी, परन उसका निगमन आपको याद हैं क्या ? उसका निगमन याद रहे, हदम में रहे और छाप इन प्रकार समार में वेफिक हो कर रह सके, यह सभा नहीं हैं।

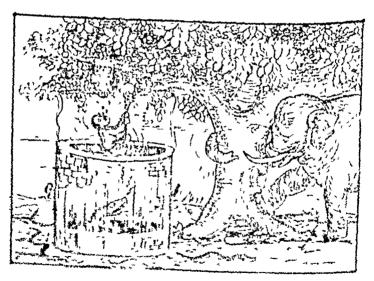
ार्डिएक साउमी साथ के नाय एक देण स दूसरे देण में सीर इसरे देल में भिन्ने देश असरप करता था। एक बार ऐसा हुमा कि निम सार्थ के बाव पर इसना था। यह सार्थ संपत्ती से अटरी में पूस सारा ।

रहार में बड़ा बड़ी था, परन्तु सार्व जैसे ही अहसी में गया



ऐसा सोचकर उसने कुएँ में छलाँग मारी, परातु उसके हाथ में एक डाली आ गई। कुँए के किनारे पर एक वट वृक्ष था। उस वृक्ष की एक वड़ी डाली कुएँ के मध्य भाग में सर्पाकार में लटकती थी। अचानक वह डाली उसके हाथ में आ गई और उसके आधार पर वह लटकता रहा।

हाथी ने कूप के पास ग्राकर ग्रपनी सूँढ से उस व्यक्ति की कूप से वाहर निकाल कर मार डालने का विचार किया ग्रीर ऐसी प्रयत्न भी किया परन्तु हाथी की मूँड उस व्यक्ति तक पहुँच न सकी।



उन प्रमान नरतात के निए तो बत पुन्त हाथी के भग में तन मता, परन्तु उपने कृत में नीने अन्ति अला ता एक विभाल अलगर अमनी क्षोरे अंद जमा गर मुँट पात बैठा हुमा दिलाइ दिला। प्रभी पड़ बद्दि मेर मुँद मारिय क्षार सभी में उसे निमल ज्ले-इस प्रगार



मधुविन्दु तुत्य है ग्रादि बाते हृदय में बसनी तो चाहिये न ? आपही ससार कम नहीं सताता है। परन्तु विषय जन्य सुखों की ग्राग्ना में विषयजन्य सुखों के ग्रास्वाद में आप लोग ससार की पीडा की परवाह नहीं करते हैं। ग्रामी तो मात्र एक ही बात है कि प्राप्त किया आए उतना प्राप्त करों ग्रीर भोगा जाए उतना भोगो।

सद्गुरु का आलम्बन ग्रहण नही किया जाता:

मध्विन्दु के हप्टान्त मे ऐसा भी वरान ग्राता है कि वटवृक्ष की शासा से लटकता हुग्रा पुरुष वहा होकर विमान द्वारा पसार हो रहे हैं, एक देव दम्पति की हिंद्द में ग्राता है उस पुरुष की ग्रवस्था देराकर देवी को दया आती है और वह अपने स्वामी को उसकी रक्षा करने के रिए ग्राग्रह करती है। देवी के ग्राग्रह पर देवियमान कोनीने उतारता है और उन पुरुप को ब्रातम्बन देकर विमान में लेने के लिये हाय लम्बा करता है। उस समय मध्विन्दु के स्वाद मे लीन बना हुमा वह व्यक्ति देव हारा दिये गए प्रालम्बन को गहगा नही करता। 'यह एक मूद चम नू" - 'बम एक बाँद श्रीर चम लू" - ऐसे करता है और देव मी तम आहर चता जाना पडता है। इस पुरुष रूपी गनारी जीव को दया रुपी देवी की प्रेरमा से तिराने की इच्छा सद्गुम्मों को होती है, सद्गुम उमे आलम्बन देकर बनाने मा प्रयत्न सम्ते हैं, परन्तु निमयजन्य मुगा में लीन बना हुमा समार्ग जींगे 'उनना भीग कर सू'— 'यन, इतना भीग तर नु । ऐसा गरता है सद्गुन्यों हारा प्रत्मा श्रा राज्यन की प्रत्मा नहीं करना। यह बात ग्रांप पर विनी शहर में त्यम होती है— इसरा विचार स्वयं ही पर से । सदगृहर्ष ो पारस्त को साम योग प्रत्मा रक्ते है या नहीं और महुरूहजन



संसार में रहना और मृत्यु से बचना सम्भव नहीं है:

वैसे तो ग्राप लोग मृत्यु से खूब डरते हैं। क्या ग्राप समभते है कि यहा जो मृत्यु होने वाली है क्या वह प्रथम बार ही होने वाली है। नहीं, तब फिर श्रापको मरने में भय किस बात का लगता है? मृत्यु का भय यदि सच्चा हो तो ससार का भय लगे बिना रहे वया? मृत्यु क्यो होती है ? जिसका ससार जाए, उसकी मृत्यु भी जाए। संसार में जो हो, वह कभी भी मृत्यु से वच नहीं सकता । हम इस संसार में आज या कल के नहीं है, ५०-१०० वर्षों से नहीं है, परन्तु ग्रनादिकाल से है। संसार मे हमने अनतकाल विताया और भ्रन^तत मररा प्राप्त किये। जहा तक हम ससार मे रहेगे तब तक तो मरेगे ही। मुक्ति मे गए हुए ही नहीं मरते। मुक्ति में गए हुए क्यों नहीं मरते ? उनके लिए जन्म नहीं इसलिये । उन्हें जन्म लेना होता, तो वे गरते भी । उन्हें जन्म नहीं लेना पड़ता, नयोकि उन्हें जन्मनिवाए ऐसा कर्म उन्होंने शेप रहने नहीं दिया। वे सकल कर्मों से सर्वया रहित बन न्के है। जो जन्म लेता है वह मरना ही है श्रीर जन्म उसी का नहीं होता, जो कमें रहित ही हो। श्रापका जन्म हुशा है गत मरे बिना श्रापका छुटगरा नहीं और मरने के पण्चात् भी जम िये विना शुटकारों होने याना है क्या ? उस जन्म मे भी गरना हो रेही ग ? तब फिर मृत्यु का भय कैसा ? मृत्यु भय की जन्म भग भे य -िद्रा वरो। जन्म में उरकर जन्म के उर को वर्म के बन्मन के भग में में न्द्रित रही। समें के बन्धन में इर कर मध्य की नाधना कर निर्जन य रना पुरु वरों। नयीन कमें यन्धन हो, बन्द ही सी सुरुही कुरो जाप घोर पुराने कमी की निर्जरा मधे, तो कम र्राटन भवन्या में गरने का प्रवसर ह्याए । ण मरे, यह मर भर जन्म नहीं चेता और जो जन्म नहीं लेगा उग कभी रास्ता भारे पहला । गरमा से एतर्स अभिका प्रयोग सार्वे परिचित्रेय के का जाए, तो माप भार के प्रदेश, गमाव में प्रदेश की



मात्र साधु जीवन में ही हो सकता है, परन्तु अन्यत्र हो नहीं सकता। यह भी एक प्रकार से निगमन है। ग्राज जो वाते कही गई हैं, उसके निगमन के रूप में ग्रापको यह साधुता प्राप्त करने की बात कहीं गई है।



इन चार सन्ध्याओं के समय में से किसी भी सन्ध्या के समय नहीं हो सकता। इन चार सन्ध्याओं में से किसी भी सन्ध्या के समय जो साध् स्वाध्याय करता है, उसे भगवान की आज्ञा का उल्लंघन गाहि दोपों की प्राप्ति होती है। किसी कारण विशेष में स्वाध्याय के काल का उल्लंघन हो तो वह दोपपूर्ण नहीं होता। जैसे हृदय में जो विधि वहुगान हो, विधि के प्रति आदर भाव हो, तो अविधि दोप रूप न होकर विधि की जनेता बनती है, परन्तु विधि वहुमान न हो, नो धोडी भी अविधि आज्ञाभगादि की दोप रूप सिद्ध होती है। अत आदर और उपयोग काल में कालोचित अध्ययन करने की ग्रोर तथा अकालवेला में स्वाध्याय का त्याग करने की ग्रोर रातना चाहिये।

पढ़ने पर भी निषिद्ध काल में पढ़े तो विराधना :

निपिद्ध समय में पढ़ने के लोभ से भी पढ़ना नहीं चाहिये। निपिद्ध समय में तो पढ़ने पर भी विराधना होती है। वैसे स्वाधाय करना प्राराधना है, परन्तु निपिद्ध समय की श्राज्ञा की उपेक्षा करना विराधना कहनाती है। एक प्राज्ञा को जानते हुए, भी विराधना करे, उन श्राज्ञा का उत्ताधन करे तो वह दूसरी श्राज्ञा का पाएन करने हुए भी श्राराधक नहीं परन्तु विराधक चनता है। श्रतः निपिद्ध समय में पटने के लोभ से भी पटने से श्राराधना नहीं होती। सारायक भाव मोशदायक है जबकि विराधक भाव समारवर्धक है। या गुत्र को श्राज्ञा की श्रोर ध्यान देना चाहिये। कात पर्व परने प्रांत धान की गुत्र को श्राज्ञा की श्रोर ध्यान में पटने में मूत्र की विराधना होने के साथ मां शुर् देवना छा भी रह सकते हैं जिसमें श्राह्म विराधना होने हैं नाम साम विराधना भी समत है। नदा प्रत्येक कार्य में जिसका जो हो नाम विराधना भी समत है। नदा प्रत्येक कार्य में जिसका जो हो का कार्य के पत्र की पत्र की पत्र कारा में ऐसे पहला श्रीर एम नाम में पत्र की पत्र की पत्र की पत्र कार्य में पत्र कार्य में पत्र की से पत्र की पत्र की पत्र की से पत्र की पत्र की से पत्र की पत्र की से पत्र की



ग्लान साधु की सेवा में मेरी सेवा रही हुई है-इस आज्ञा

को पड़ने के राग मे न भूलें: निपिद्ध काल मे स्वाध्याय करते हुए एक साधु को महीर वनकर मार्ग दर्शन करने के एक प्रसग का महापुरुषों ने वर्शन कि है। एक वार एक साधु काल ग्रह्ण करने के पश्चात् कालिक सूर्य का अध्ययन कर रहेथे। रात्री मे भी प्रथम पोरिसी मे मूल सूत्र का अध्ययन हो सकता है। स्वाध्याय के मोह मे उन साधु को समय ना ध्यान न रहने से अकाल हो जाने पर भी वे पाठ करने रहे।

साधुत्रों के लिये कियाये और उनका समय निश्चित् है। साधुत्रों को अपनी सारी कियाएँ काल में करने हेतु प्रयस्त्रभीर वनना चाहिये। मात्र कियाये करना-इतना ही लक्ष्य रखे, पर्वु अकाल में करना-यह लक्ष्य न रखे तो कियाएँ कव्ट में पड़नी है। अकाल में किया करने से लोक निन्दा का पात्र भी वनने से शासन की निन्दा का भी सभवत निमित्त बन सकता है। प्रत्येक किया कत्य काल में करने वाला ही वास्तिविक पडित है। जिन कल्पी की सारी कियाएँ काल में ही होती जाती है, क्योंकि उनका पूर्व का कियाभ्यास वैसा हो चुका है। उस प्रकार अप्रमत्त जीव का जीवित रहने ही प्रयत्न जारी रहे तो प्राय ग्रकाल में पटने का ग्रवसर ही न आए। स्वाध्याय के समय में स्वाध्याय हो और ग्रन्य कियाग्रों के गम्य सन्य शियात हो। कई माधु पटने में इतने प्रधिक मग्न हो जाते हैं कि मेरा अध्ययन विगरमा' ऐसा सोचकर वे वैयान्य व नगर में भी पटना जारी रसकर वैयावृत्य के ताभ में विभिन्न रहने हैं। ऐसा करने माने को प्रभु को ग्राज्ञा का सन्या शार न होना मन उन्हें जिनाहिन का होण भी नहीं रहना। ऐंप राज्य के जिस्तान मात्रुको मेना नी प्रावण्यकता के जानर है िन प्रमुची यह आजा है कि भिनी मेवा यह करता है, औ शा करण को अस प्रता है, कान मानू की मेना न करने याता, प्रमण



शासन देवता ने मार्ग दर्शन किया :

स्वाध्याय करते करते उस महात्मा को ग्रकाल हो गया-उसका पालन नही हुग्रा, परन्तु उस साधु की भविष्यता ग्रच्छी थी।

उस महात्मा को इस प्रकार स्रकाल में कालिक सूत्र का स्रव्ययन करते देखकर उस स्थान के निकट रहे हुए शासन देव ने सोचा कि 'इस साधु के साथ संभवतः कोई व्यतर छल करेगा।' इससे उस साधु को व्यतर के छल से बचा लेने का उस शासन देव ने निर्णाय किया।



हे है कि उस भागतेश में जठीरने का रात भागस विभाव राज्य का का का का मान हर सभी निरुपर स्टब्स का एक गई

विनय धंमें का मूल है:

जिनके पास ज्ञान लेना हो, ज्ञान प्राप्त करना हो, उनके प्रित विनय का ग्राचरण करने मे ग्रात्मा को खूव खूव ग्रम्यास करवाना चाहिये। विद्यादाता गुरु परम उपकारी है, ग्रत. उनके चरणों मे वार-वार भुकना चाहिये। विनय के विना तो सामान्य



मत भी पही थाना है रै यूनिया का व्यवहार भी विनय के बिना परा या पारे । दुनिया में भी जिनके पास से या जिनके द्वारा कुछ प्राप्त गारका है, पार गानास वापनी पाती है नारे किसी की निर्धित परका पाटा भित्र नाहब, प्रानिधि प्रादि मानसूतक णहर निष्कर के उपस्थान कोई वास्ता है-देश पिसना प्राप्ता है और निर्धित

लिया। उसके बाद उस व्यंतर देव ने भी अपने वचन के अनुसार एक स्तभ वाला महल और उसके चारों और उद्यान वना दिया।

श्री श्रे िएक तो उस महल को ग्रीर उस उद्यान को देखकर खूव ही खुश हो गए। उन्होंने चेल्लएग देवी को उस नूतन प्रासाद में रखी। चेल्लएग भी तृष्ट हुई ग्रीर ग्रपने को मिली हुई नूतन सामग्री का उपयोग वह प्रभु भक्ति में तथा पित भिनत में करने लगी। चेल्लएग स्वय ही सब ऋतुग्रों के पृष्पों की मालाए नित्य गूं थती थी ग्रीर उन मालाग्रों से प्रभु की पूजा करती थी तथा पित के केशपाश मजाती थी।

धर्म को प्राप्त की हुई स्त्रिया प्रभुभवता और पित भवता हो इसमे श्राष्ट्य जैसा कुछ नही है। शीलगुरा की स्वामिनिया जब धर्म वासित अन्त:-करगा वाली वने, तब वे प्रभुभिवत में लीन होने के साथ-साथ पित भिवत का भी विकास करती है।

चेल्लाए। इस प्रकार जब सुख विहार कर रही थी, तब ऐसी घटना हुई कि जिसका विनय नामक दूसरे ज्ञानाचार से सम्बन्ध है।

उस नगर में एक मातंगपति रहता था। मातंगपति तो स^{मक्रे} न ? ढेढो का प्रधान। वह मातंगपति विद्यानिद्य था।

उम मातगपति की पत्नी गर्भवती थी । उसे आग्रकत सानै का दोहद उपस हम्रा ।

नह अनु यायक की न थी, फिर भी उसे ऐसा चोहद एत्वर्स हुया। यह जानती ही थी ति भेरे पनि वियासित है सथा चे नगा गती के उद्यान में हर समय आस्त्रवृक्ष फल सहित होते हैं, अत ने स बेल्ड पूर्ण हुए विना रहने साता नहीं था। उसने अपने पनि अव भंडर शहर की बात करी।

श्रारचर्य पैदा करवाती है, वैसे ही उनकी पितृभिक्त भी श्राश्चर्य करवाती है. श्रोर उनकी श्राराधना की भावना भी श्राश्चर्य करवाती है। किसी से भी न ठगे जाए ऐसे वे वेश्या के धर्म छल से ठगे गये थे, यह भी उनकी धर्मशीलता का ही एक बड़े से बड़ा प्रतीक है। पिता की जिन जिन इच्छाश्रो की उन्होंने पूर्ति की है, वे भी प्राय: ये ही पूरी कर सकते है– ऐसा कह सकते है।

पिता श्री श्रे गिक की आज्ञा सुनकर श्री अभयकुमार ने कहा कि 'उम चोर को घोडे ही समय मे उपस्थित करने का विश्वास दिलाता हूँ।'

इसके बाद अपनी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने हेतु रात और दिन श्री अभयनुमार ने उस बगीचे के आय-पास तथा सारे ही नगर में परिश्रमण करना शुरू किया, परन्तु कही भी चोर का पता न त्या। कही पर भी आम के छितके या गुटलिया भी दिराई नहीं विये, नयों कि वह मातगपति मावद्यान था। उसे मातूम था कि राजा का कितना बहा अपराध वह कर चुका है और यदि पकडा जाए तो फिर यह अपनी पत्नी का मुँह देखने के लिए भी जीवित घर आ नहीं मकता।

श्री अमयगुमार हारा कथिन कथा:

जब कियाँ वशार नोर पछडा नहीं गया, तय युद्धिनिधान शी अरुणकुमार ने एए युक्ति नगाई।

नई दिन हुए नगर चन एए रगाई पर नाटर ना आयोजन अरश रहे थे। उस नाएक को देखने हैं किए सौर सुनने के किये नगर जब महुब भी एकी सहया से एकति ए होते थे। श्री अपयशुकार शी इन्हें इत्तर उस रक्षात पर मुख्या

क्योंकि में अभी कुमारिकां हूं और इसलिए पुरुष के लिए अस्पृश्य है।

माली ने तुरन्त ही उसे छोड तो दी, परन्तु छोडने से पूर्व उसके पास प्रतिज्ञा करवायी कि शादी के बाद वह सर्व प्रथम सभीग उस माली के साथ करे।

आपको घ्यान आएगा कि उस समय के व्यभिचारी पुरुप भी कन्याओं के शोल का खड़ने तो नहीं करते होंगे। आंज क्या होता है और कैसे होता है— यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

माली से मुनत होकर वह कन्या अपने घर गई। कुछ ही समयं में किसी उत्तम जन के साथ उसका पािए ग्रह्णा हुया। वह जब शादी करके प्रथम बार अपने पित के आवासगृह में गई, तब उसने अपने पित से कहा कि है आर्य पुत्र! मैंने एक माली से प्रतिज्ञा की है कि शादी के पण्चात् मेरे प्रथम सग उसके साथ करना। मैं उसके साथ वचनवड़ हू, अत यदि आप मुभे आजा दे तो में एक बार उसके पास जा जाऊ। फिर तो सदा के लिए में यापके ही अधीन रहगी।

यह बात मुनकर उसका पति कुद्ध नही होता। वह हो .िनिमत ही हो जाता है। यह मोचता है कि यह बाता कैसी शुद्ध हिया वाजी है और अपनी प्रतिशा को कैसी पातन करने बातो है है ऐसा मोचकर यह अपनी नविज्ञाहिता स्वी को उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण सरने देन अनुनति बना है।

सत्र नह बाता पर में से निराध्यार उस माली के पास जान के जिल क्याना ही ती है। उसमें बहुमू स बरण पहिल रसे है नका भागी पानपा भी पारण पर रहें है। धार्म में उसे सार मिन है हैं। धीर अहार है कि पर है ही जानपार उसार कर हमें सीए दे, अल्या हमें उस राह हमें सीए दें, अल्या हमें उस राह हमें सीए दें, अल्या हमें

प्रातः उस पुरुष ने उस स्त्री को ग्रपने सर्वस्व की स्वामिनी बना दी।

इस प्रकार श्री श्रभयकुमार ने नगरजनो को कथा कह सुनाई। श्री श्रभयकुमार यहा न तो नाटक देखने आए थे न कथा कहने आए - थे, परन्तु उन्होने श्रपने पिता को जो वचन दिया था, उसकी पालन हो सके ऐमा कोई उपाय मिल जाए, तो उन्हे शांति हो इसलिए श्री - ग्रभयकुमार यहा आये थे। उन्होंने नगरजनो को जो यह कथा कह सुनाई थी, वह भी इसी हेतु की सिद्धि के लिए कही थी।

चोर को हूं ढ निकाला और पकड़ा :

इसिनिये कथा कह चुकने के बाद नगरजनो को सबोधित कर श्री अभयकुनार ने पूछा कि आपको मैंने जो कथा कही, उसमें किसने सबसे अधिक दुष्कर कार्य किया कहेंगे ? उस बाला के पित ने, चोरों ने, राक्षम ने या माली ने? आप सोचकर इम बात का उत्तर दें।

ऐसे प्रमगों में, उत्तरदाता के हृदय का भुकाव उत्तर में कथित बात पर में जाना जा सकता है। नगरजनों में जो लोग ईव्या वालें थे, भपनी पत्नी तिसी के पाम जाए ऐसा जो सहन नहीं कर स्वतें थे- ऐसे स्वभाव के जो तोग थे उन लोगों ने थी ग्रभयकुमार के प्रका के उत्तर में कहा ति इन नारों में सबसे अधिक दुरकर कार्य तो उसकें पति ने तिया ऐसा हम कहेंगे, गयाकि अपनी नविव्याहिता पत्नी की ग्रम स्वर्ण भी उन्होंने नहीं तिया था, फिर भी उसे श्रम्य पुष्ट्य के पाम जाने थी।

नगरतमें में तो लाग रेंगे राभाव के थे कि जन हमय मूर्ते ता पर चाहे दिखान चाहे जा हो सो भी साए विवाय हैं, नहीं बहाते को राभावता के परवाने उन्तर मजता कि मर्ब में स्मीता वैर्तर वाहित्रका कादा को कारा ही महारा वाएगा, क्योंकि यह ध्राप्तूरी



हो सकती, तो फिर यह जो वड़ा ही शक्तिमान् चोर है, अतः इसकी उयेक्षा न कर, इसका नि.सन्देह होकर निग्रह ही करना चाहिये।

उस समय श्री अभयकुमार ने-श्री श्रे शिक महाराजा को निवेदन किया कि 'पहले तो आप इसके पास जो विद्या है, उसे गहरा कर ले, श्रीर तत्पश्चात् आप को जैसा उचित लगे वैसा करे।'

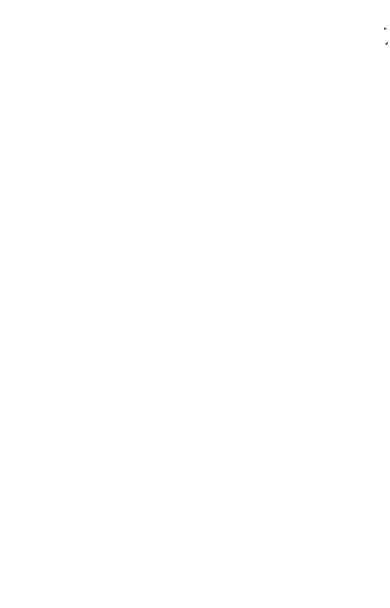
श्री श्रे िएक को श्री ग्रभयकुमार का निवेदन उचित लगा यतः राजा ने उस मातगपित को ग्रपने पास विठाया श्रीर उसे जो विद्या श्राती थी, उसे वोलने के लिये कहा।

मातगपित ने अपनी विद्या बोलकर देना गुरू किया, परन्तु राजा के हृदय में वह घर न कर सकी। बार घार दुहराने पर भी राजा के हृदय मे विद्या स्थिर न हो सकी, क्यों कि राजा सिहासन पर बैठे थे श्रीर विद्यादाता मातंगपित नीचे बैठा था। इस प्रकार चैठने से विद्यादाता का श्रविनय होने से विद्या का राजा के हृदय में स्थिर न हो गकना स्वाभाविक है।

परन्तु श्री श्रेणिक को तो एसा ही लगा कि यह मातंगपित ही कुछ रौतानी करता है। श्रतः उसका तिरस्कार करते हुए श्री श्रोणिक ने उसे कहा कि तुक्त में कुछ कपटभाव है श्रीर इसीनिये तेरे द्वारा कियत विद्या मेरे हुदय में सामित नहीं हो सकती।

त्य वृतिनियान श्री अभयकुमार ने कहा कि 'हे देव! इस ममय तो यह आपका विशापुत है और जो गुरू का विनय करते हैं उन्हें ही बिद्या पित्र होती है। गुरू का अविनय करने ताले में स्थित पित्र नहीं होती। अने आत अपने मिहामन पर हमें बैठारी और आप उमीन पर इसके मामने हाथ जोड़कर बैठें। ऐसा करने से आप को संक्षर विद्या आपने होती।

भी भीतिशामी समजदार थे। तुरनाहो । इस बात की



श्रादि ज्ञानोपकरएा का विनय कहलाता है। श्राज ज्ञानोपकरएा की अवज्ञा तो बहुत बढ़ती जा रही है, ऐसा भी कहे तो चलेगा। पेन, पेन्सिल मुँह में ढ़ालने से ज्ञान की श्रवज्ञा होती है। कागजादि पानों के नीचे श्राएँ, इसमें भी ज्ञान की श्रवज्ञा होती है। त्राज समाचारपत्री द्वारा तो ज्ञान की गजब की ही अवज्ञा हो रही है। कई श्रज्ञान और मूर्व स्त्रिया बच्चों का मल उठाने श्रीर फेकने में समाचारपत्रों का उपयोग करती है। स्वरूप में मिध्या भी श्रुत के कागज, पुस्तक श्रादि पर पांव नहीं रखा जा सकता। न इनके थूक लगाया जा सकता है। ज्ञान की श्रवज्ञा की तो कितनी चर्चा करें? श्राज तो बूट और चप्पलों के नीचे भी अक्षर होतें हैं श्रीर श्राप लोग उन्हें पांचों में पहिनकर उन श्रक्षरों को जमीन पर घिसतें है। श्राजकल सड़कों पर भी लोगों की लिखने की श्रादत बढ़ गई है श्रीर इसमें भी ज्ञान की बटी प्रवज्ञा होती है। इस प्रकार ज्ञान की श्रवज्ञा करने वालों का जिधाग भयकर सिद्ध हो, इसमें श्राप्त्रचं नहीं।

वहुमान नामक तीसरा ज्ञानाचार:



की चिन्ता सतत वनी रहती है श्रीर कैसे उनकी इच्छापूर्ति की जा सकती है इसका चिन्तन भी रहता है। उनकी इच्छा के विरुद्ध तो चलने को इच्छा स्पप्त मे भी नहीं होनी, परन्तु उनकी एक एक इच्छा को सतुष्ट करने का मन हुआ करता है। बहुमान का यह प्रथम लक्ष्मा है।

बहुमाने का दूसरा लक्षरा यह है कि जिसके प्रति वहुमान हो, उसके दोप देखने का मन नही होता, दोप दिख भी जाय, तब भी उन दोषों को हृदय महत्व नहीं देता, परन्तु उन्हें भूल जाता है, और उसके दोपों को ढकने की सतर्कता रखता है । कोई उसके दोप जान न सके, इम बात की सावधानी रखता है। कोई उसके दोपों की वात करे, तो उसे यथाशक्ति रोकता है उसके गुएगो की भ्रीर देखने की बात कहता है। इन गुरगों के सामने इन दोपों की कोई कीमत नहीं ऐमा भी कहता है, ये दौप भले ही दोप रूप लगते हो, परन्तु वस्तुत इसके लिए ये दाप रूप है या नहीं गह विचारणीय है ऐसा भी कहता है, ग्रीर दोषों के कथन को रोकने का सामर्थ न हो तो मन में दुग का प्रनुभव कर ऐसा खिसक जाता है कि जिसमें दोपो की वात कान में न पड़े। जिसके प्रति बहुमान होता है, उसके लिये

हृदय में ऐसा भाव भी उत्पन्न हुए विना रहता नहीं। बहुमान का तोनरा लक्ष्या यह है कि जिसके प्रति बहुमान हीता है, उसके श्रम्युदय का अहानिश चिन्तन रहा करता है। उसके दीपो का जैमे प्रान्धादन करना है, बैसे ही उसके दोप कैसे नष्ट हीं प्रोर उसके गुणो में कैसे वृद्धि हो, इस बात का विसार भी उसके मन में उत्तरन तीना रहता है। जैसे उसके आक्सरतर प्रक्युस्य की भावना रहा तुरसो है, वैसे हो उसके बाह्य प्रशुद्ध की भावना भी रहती है। कोई महि उनकी प्रथमा करता है, तो बहु उमें बहुत विव नगर है। उनहीं निन्दा के प्रति जीना तिस्सान होता है। धैरा ही उसकी पश्चा के और उसता सद्भाव होता है। स्वय व्यक्ती प्रथमा । तम 🖟 प्रीर दगरा १। भी प्रयोगीत जमकी प्रथमा

it off of a

काँशतः स्वार्थी है ग्रतः कदाचित ग्रापको इस चीज का सही स्वाल तुरन्त न ग्रा सके, परन्तु ग्राप यदि किसी के प्रति निस्वार्थ प्रीति वाले ग्रथवा पूर्वभव के ऋगानुवंधी स्नेह वाले होगे. तो उसका विचार करने पर ग्रापको इस-वस्तु का वडी सरलता से स्थाल ग्रा सकेगा। उसकी इच्छाएं फलित हो, उसके दोप ढँके और उसका ग्रभ्युदय कैसे हो, ऐसा मन मे हुग्रा ही करे तथा उसकी दुर्दशा से ग्रत्यन्त दु खित हुग्रा जाए ग्रोर उसके ग्रम्युदय से श्रत्यन्त-प्रसन्त हुग्रा जाय-ऐसा भी हो ही। यह सब करना पडे नहीं, परन्तु हो ही जाए प्रार्थित गुर्वीद के प्रति भक्तिपूर्ण प्रीति को उत्पन्न करने का प्रयत्न जारी ही रखना चाहिये।

वहुमान में वहुत वडी वाधा आ गई है :

इस चात को आप वर्तमान बाताबरण के साथ जरा तुल्ला कर देखे। आज बहुमान का कितना अधिक नाण हो चुका है? आपके ससार में, आपके गाता-पितादि बड़ों के प्रति आपके हदम में इस प्रकार का बहुमान है क्या? प्राय नहीं है। इसी प्रकार देव-गुर धर्म के प्रति आपके हदय में बहुमान है क्या? आज बात बात में माधु-माध्यियों के छिद्र देसे जाते हैं, दोषों पर प्रकाण डाला जाता है, छोटे दोषों को बटे करके अपमान किया जाता है, यहाँ तक कि म होने पर भी दोषों का आरोपण किया जाता है तथा उनके अभ्युद्य वी और दुनंदम किया जाता है। ये आदि बहुमान का अभाव बताते है। महो बात तो यह है कि देन के प्रति सच्चा समक्षपूर्वक बहुमान वती, उम्मित्त वेव द्वारा किया धर्म के प्रति भी बहुमान नहीं भीर द्वीपिए साथु-माध्य के प्रति भी बहुमान नहीं और प्रभी नग देन गुरू भर्म के निनम की प्रियाए कई प्राणों में चन प्रति किया है में का किया आ गई है, परना देव-गुरू-में क्षा बत्ना के या का दी जाता आ गई है। बन में द्वारा क्षा बत्ना के या का दी जाता आ गई है। बन में द्वारा क्षा बत्ना के या का दी जाता आ गई है। बन में द्वारा क्षा बत्ना के या का दी जाता आ गई है। बन में द्वारा



इसकी तो कोई विशेष कीमत ही नहीं, जबिक विनय और बहुमान दोनों का ग्रभाव-सर्वथा निरर्थक ही है।

वहुमान से एकान्त रूप में कल्याण:

विनय है शारीरिक किया विशेष, जबिक बहुमान है प्रान्तरिक भाव विशेष । शारीरिक कियाविशेष तो दिखाने के रूप मे भी होता है, वयोकि यह बाहर दिखाया जाता है, अर्थात् बहुमान रहित भी विनय हो सकता है। विनय हो वहाँ बहुमान हो भी सकता है. न भी हो सकता है, जबिक बहुमान हो तो शक्ति समक सामग्री के अभाव मे ही विनय न हो, परन्तु इसके अलावा तो अवश्य विनय होगा, क्योंकि जिसके प्रति वहुमान है, हृदय का आकर्षण है, वह शक्य हो तो विनय द्वारा प्रदर्णित हुए बिना रह नहीं सकता। वास्तविक रूप से बहुमान ही कल्यामा करता है। विनय यदि वहुमानपूर्वक हो, तो वह विशेष कल्याएकारी होता है। वहुनान रहित विनय तो दभरूपी भीहोता है। स्वार्य सामना के लिये भी होता है। उसकी कोई कीमत नहीं आंकी जा मकती । यह तो विनयगुरा का व्यभिचार मात्र है । ऐसे विनय से तो उत्दा माध्धान रहना पहता है। श्री उदायन राजा का धात करने याले ने मुनिवेश में कैंमा विनय दिलाया था ? विनयरत्त ऐसे नाम का यह प्रिविकारी बना था। परन्तु यह सब मात्र सून करने का भवनर इँटने के लिए ही था। बिनय तो मागारिक कायसिद्धि के रतार्थ हेतु भी तिया जाता है। अन्यायी अत्यानारी राजा या विकारी की उनके प्रति जरा भी प्रेम न होने पर भी नगरकार परना पाटवा है न ? यह भी विनय है, फिर भी केरना पड़े ऐसा िनप हैं, यह विनय, सामने बाले को येन-केन प्रसन्न करने का विनय । पर विनय है पर हदा में बहुमान नवी है। विनय स्वार्थ रद भी राध है, जबति वहमान परमार्थ से भी हाता है। जिन्हम के जात प्रवाद है, जिन्यं गम का मूल है, प्रस्तु बहुमानतु कि

इसकी तो कोई विशेष कीमत ही नहीं, जविक विनय ग्रीर बहुमान दोनों का ग्रभाव-सर्वेथा निरर्थक ही है।

बहुमान से एकान्त रूप में कल्याण:

विनय है शारीरिक किया विशेष, जबकि बहुमान है ग्रान्तरिक भावे विशेष । शारीरिक कियाविशेष तो दिखाने के रूप मे भी होता है, ^{क्योकि} यह वाहर दिखाया जाता है, अर्थात् बहुमान रहित भी विनय हो सकता है। विनय हो वहाँ बहुमान हो भी सकता है, न भी हो सकता है, जविक बहुमान हो तो शक्ति समक्त सामग्री के स्रभाव मे ही विनय न हो, परन्तु इसके अलावा तो अवश्य विनय होगा, वयोकि जिसके प्रति बहुमान है, हृदय का स्राकर्पण है, वह शक्य हो तो विनय हारा प्रदर्शित हुए बिना रह नहीं सकता। वास्तविक रूप से बहुमान ही कल्याण करता है। विनय यदि वहुमानपूर्वक हो, तो वह विशेष कल्यासाकारी होता है। बहुनान रहित विनय तो दभरूपी भीहोता है। स्यार्थ सायना के लिये भी होता है। उसकी कोई कीमत नही ग्रॉकी जा सकती । यह तो विनयगुरा का व्यभिनार मात्र है । ऐसे विनय से नी उत्टा नाध्धान रहना पडता है। श्री उदायन राजा का घात करने वाने ने मुनिवेश में कैंसा विनय दिखाया था ? विनयरत्न ऐसे नाम का वह अविकारी बना था। परन्तु यह सब मात्र ग्रून करने की भागमर तूँ टने के लिए ही था । विनय तो मामारिक कायसिशि के स्तार्थ हो भी किया जाता है। अन्यायी अत्याचारी राजा या अधिकारों को उनके प्रति जरा भी प्रीम न होने पर भी नमस्तार न रना पहला है सरे पट भी जिनसहै. पिर भी करना पर्छे ऐसी विनार है, यह विना, सामने वात हो येन-केन प्रसन्न करने वृ िनव । वट स्मिप है पर हदय में बहुमान नहीं है । विनय स्वार्ण है। भी त्या है तबीर अनुमान परमाय से भी हाला है। पिनयु म र असी में क्या है, स्तिम अमें का मृत्य है, परेन्तु सेर्मानहुर्वम



विद्या से विद्या प्रकार से फिलत होती है जब कि वही विद्या दूसरें में उस प्रकार से फिलत नहीं होती। इसका कारए यही था कि एक में जो विनय 'था वह बहुमान पूर्वक था और दूसरें में जो विनय था वह बहुमान विहोन था। ऐसे अभिप्राय को लक्ष्य में रखकर और ऐसा अभिप्राय होने पर, विनयवान् होते हुए भी जो बहुमानविहीन हो, वे बहुमानपूर्वक विनयवान् विने —ऐसी आश्री रखकर यह उदाहरए। दिया जा रहा है। आपको भी यह उदाहरए। इसी हेतु को लक्ष्य में रखकर सुनना है। इसलिए उदाहरए। को हैं। का वर्णन यहाँ पहिले किया गया है।

-विद्यागुरु के बहुमान के संबंध में उदाहरण ः

एक सिद्ध पुरुप के पास दो विद्यार्थी अभ्यास करते थे। ये दोनो विद्यार्थी 'विनय का आचरण करने में निपुण थे, परन्तु एक अपने विद्यादाता गुरु के प्रति बहुमान भाव से विनय का आचरण करना था, जबिक दूसना केवल रूडी का अनुसरण कर ही विनय का आचरण अपनरण करता था। दूसरे के हृदय में विद्यादान के प्रति बहुमान की भाव न था।

इन दोनों विद्यार्थियों को उस सिद्ध पुरुष ने श्रव्टांग निमित्त शास्त्र पढ़ाया श्रोर श्रव्टांग निमित्त शास्त्र में वे दोनों निपुरा हो गए।

एक दिन किमी कार्य निशेष का अवलवन कर वे दोनो ही एक गाय बाहर गए। मार्ग में जाते-जाते गार्ग में पड़े हुए पद निरहों की देएकर दूसरे विद्यार्थी ने पहिले विद्यार्थी ने करा कि आमें राभी जाता है।

उसरे अनुमान को मृनकर पत्नि विद्यार्थी ने नहां कि हायी वर्ति जाना परन्तु जीवनी जाती है। यह हिमती बाँद और से कानी है। इस जीवना पर नर्भा-पूरप नैके तुस् है। इसमें जी स्पी है जिसे



बहुमान के विना भी वह विनयाचार का पालन करने के लिये अभ्यस्त है इसी का यह परिगाम है। उसमे यदि बहुमान का भाव होता तो कितना स्रच्छा होता।

उसने जो कहा उसे सुनकर गुरु को आश्चर्य होता है क्यों पिप का भाव उसमे हैं, न कि गुरु में। ऐसा-ऐसा उसने कह डाला फिर भी गुरु पूछता है कि 'तू ऐसा क्यों बोलता है? मैंने तो विद्या देने में या आम्नायादि देने में किसी भी स्थल पर किसी प्रकार किसी को नहीं ठगा।'

गुरु ने विल्कुल सच्ची बात सीधी रीति से कही, इससे शान्त होने के बजाय यह बहुमान रहित शिष्य अधिक कुद्ध होकर बोला— 'उस तुम्हारे प्रिय शिष्य ने मार्ग में हथिनी आदि जो कुछ कहा बहु नारा नत्य सिद्ध हुया और मेरा तो कुछ भी सत्य न निकला, तो उनमें आपके पढ़ाने में ही गड़बड़ है या नहीं। यदि आपने समान रूप में पड़ागा होता तो दोनों का कथन सच्चा निकलता। यह तो इसका कहना मन्य निद्ध हुया अतः इसका सम्मान हुआ और मेरा कथन मिड्या निकला अतः मेरा अपमान हुआ। तब इतने वर्णों तक मिर गाने वाला परिथम करके में तो मरही गया और अन्त में मुक्ते तो यही पत्र मिला न ह कहिये उनमें अपराम आपका नहीं तो किय का?

दस प्रवार उम विद्यार्गी ने अपने विद्या पुरु को बहुत नहन रहीर बनन गरे, जिसमें विचा गुरु को तमा कि यह मुक्ते व्यर्थ परे-हान करेगा घनः इसके समझ ही रचन्द्रीहरण हो जात को घरन्य-ऐसा सक्ष्म कर इस विद्या गुरु ने नुरस्त ही उन विद्यार्थी को बुनामां होरे को पुरुष हि 'तन मक्ष्म में होनिनी काबि को गुद्ध महा गर किम राष्ट्रार पर कहा बहु मुक्ते मेनिन्तार कर सन्दर्भ

प्रथम शिष्य की ऐसी अनुपम बुद्धि प्रतिभा की देखकर विद्यागुरु सिद्ध पुत्र वड़े ही प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने उस दूसरे शिष्य से
कहा- 'तू वता कि इसमें मेरा दोष है क्या ? क्या मैंने इसे कोई विशेष
विद्या दी है क्या ? सही वात तो यह है कि तू मेरा विविध प्रकार से
विनय करता था, परन्तु तेरे हृदय में मेरे प्रति बहुंमान नही था। ये
सभी विद्याएं तो बहुंमान गिमत विनय चाहती है। तेरे साथ ही
अध्ययन करते हुए इस बुद्धिमान शिष्य के हृदय में मेरे प्रति अच्छी
तरह बहुंमान था। इसमें स्वाभाविक वैनयिकी बुद्धि भी है। यह बुद्धि
भी सम्यक् प्रकार के बहुमान से मित ऐसे विनय से ही बहुत स्कृटित होती है। अब तू ही बता कि इसने जैसा निरीक्षण किया और
जैसी विचारणा की वैसा निरीक्षण तथा वैसी विचारणा तू नहीं कर
सका तो इसमें मेरा क्या दोप है ?

विद्या गुरु सिद्धपुरुप ने जब इस प्रकार उसे समभाने का प्रय-न्न किया, तब वह शिष्य तो ग्रीर अधिक कृष हुआ। विद्यागुरु ने मच्ची नच्ची कमी बताई तब भी वह बात उससे सहन न हुई। उसने तो ग्रीत गोधानुर हो कर पढ़ने की पुस्तको की पटकते हुए कहा कि नहीं नुम्हारा कोई दोप नहीं, दोप तो मेरा ही है।

्म प्रभार कहकर वह वहाँ से तुरन्त ही अपने गाय जाने के लिए रवाता हो गया। अपने गाय वह अपनी नत-विवाहित पत्नी को होट कर पदने के लिए यहा सामा था। नविवाहिता को छोट कर पर्ने में वर्षों तक समय बिताने के बाद भी उनकी विद्या सफा न हुँकी इन्हिंग्य उनमें घर बारर अपनी पत्नी पर अभेय बरगाया। उन बियारों को सूब विटाई की घीर उमें सूब गानिया थी। उनके बार गा के बार

किया। वाते करते करते वह नित्य भील को उसकी कुशलतादि

एक दिन उस ब्राह्मण ने भील के साथ वातें करती हुई शिव मूर्ति देखी। इससे वह कुद्ध हुँग्रा ग्रौर उसने शिव को उपालम्भ देते हुए कहा- 'श्राप नीच के साथ इस प्रकार वाते करते है, स्रत' आप

व्यंतर ने शिवमूर्ति उत्तर देती हो, इस प्रकार वताया कि इसका मेरे प्रति प्रतिशय हढ अनुराग है। कल प्रातः तू वह देख सकेगा।'



ब्राह्मण नी इस दिन उपेका कर चला गया। तुम्दे दिन कर बह मीउर इस उस सिवस्थित सा सम् भाग जनता जनते हैता। हम सर

है कि जो विनयाचार है वह वहुँमान पूर्वक होना चाहिये। बहुँमान हो श्रीर विनयाचार न हो तो समभे कि समभ, शक्ति सामग्री श्रादि की कोई ऐसी कमी है जिसके कारएा विनयाचार नहीं, वरना एसा वह-मान वाला विनयाचार किये विना रहे नहीं। भ्रनुतर-वासी देव वड समभदार होते हैं। वे सदा तत्व स्वरूप की विचारणा मे रमण करने वाले होते है। फिर भी वे भगवान के कल्यागादि के उत्सवादि मे उपदेश में या अन्य कहीं नहीं जाते। इससे क्या यह मान ले कि 'उनके हदय मे भगवान और भगवान द्वारा कथित मार्ग के प्रति श्रद्धा नहीं है ?' नहीं । ऐसी बात नहीं है। उन देवों की स्थिति ही ऐसी होती है कि वे सदा सुख शय्या में सोए रहते है। भगवान श्रीर भगवान के मार्ग के प्रति तो उनके हदय मे भारी वहुँ मान होता है। वहुँ मान के इस वर्गान से विनयाचार की उपेक्षा करने की बात नहीं कहीं जा रही है विनयाचार की जो उपेक्षा करता है ग्रीर उसका बहुगान के नाम पर जो बचाव करता है, वह तो बहुँमान से रहित है- इतना ही नही, परन्तु वैसे लोग सही अर्थ मे तो मार्ग का अपमान करने नाले हैं। ऐसे दया वाले तो दुर्लंभ बोधि वनकर संसार मे भटकते

थी उपधान तप:

चीना ज्ञानाचार उपवान है। 'उप' श्रथति गुरु के समीप रहें फर 'धान' श्रयति विधि पूर्वक तपश्चरम्। का स्नाचरम्। करके शून गो धारम्। अर्थात् विधि पूर्वक तपश्चरम्। का स्नाचरम्। करते के गांत सद्गुर के समीप रहत्तर सद्गर द्वारा श्रून को धारम्। करती चालि । इसमें ता की विधारता होने से इसे उपधान तप के नाम के पित्राता आता है। श्री नकाम मश्रादि श्रून के साराधन और धाराव निवित्त स्थानक स्रोट सुश्राविकाम् जो उपधान तप सरते

ही है, वास्तविक ज्ञानी नहीं । ग्राज सम्यक् श्रुत का वर्तमान की अपेक्षा ठीक-ठीक परिस्माम में गिना जाए ऐसा ज्ञान रखने वाले भी पौद्गलिक उन्नति मे मग्न हो रहे है, ग्रनाचारो के मार्ग पर बहें जा रहे हैं, पवित्र विचारो का त्याग कर, अनाचारो का सेवन करने के साथ-माथ ऐसा करने मे दोष नही-ऐता मनवा रहे है, उपकार मनवा रहे है-इससे लगता है कि उनमे ज्ञान विपरीत रूप मे परिणित हुआ है। ज्ञान तो ग्रनाचार के विचार मात्र से भी ग्राघात पहुँचाए ग्रौर प्रतिचार का भी डर पैदा करता है। इस हिष्ट से देखें तो ग्रापकी लगेगा कि ऐसे लोगो का ज्ञान फलित तो नही हुआ, परन्तु फट निकला है। ज्ञान की प्रशसा मोक्ष के कारण को तेकर ही है और मोक्ष की स्रोर जिनकी हिन्ट न हो उसका ज्ञान सफर नहीं होता। मोध के अर्थीपन को पैदा करने वाली वृत्ति भी ज्ञान से यदि प्रकट व हो, तो उम ज्ञान मे आशिक भी प्रणसा पात्रता नही रहती। ज्ञान यवि कम हो परन्तु मोक्ष का अर्थ लिये हो तभी वह उन्नतिकारक वन मकता है, और ज्ञान के रूप मे गिना जाने के योग्य तो सम्यग्दर्शन गुगा के प्रकटीकरण के पश्चात् ही बनता है। ऐसे सम्यक्तान वाले ध्रमावधानी से भी गुरु का नाम छिपाने का, अन्य का नाम देने का श्रिक कम पढे हुए कहने का पाप सिर पर न आ जाए इस बात की गावधानी रखने वाले होते है।

व्यज्ञन नामक ज्ञानाचार:

क्पान नामक छुटा जानाचार है। व्यंजन भन्य के स्रतेफ सर्न होते है परन्तु यहां व्यंजन का सर्थ 'सदार' सहस्य किसा जाए, भीर 'स्र' सर्पद राग नवा 'ए' यादि व्यजन-इन दोनों अर्थी का उवीं समादेश वरना है। स्वंच में एक भी शक्षण का हैर-फेर नहीं होता च रिक्रा एक भी सदार का हैंग फेर हो जाए, तो उसीं रूप में है। फेर हो आता है। स्पेज दी सामी न एक पदार

कुरान को ही देगा, जनिक उसकी स्वय की इच्छा थी कि राज्य अपने पुत्र को मिले। इसलिये वह रानी कुमार कुरााल के ब्रनिष्ट का ही अवसर ब् डती रहती थी।



रानी ने नहीं आकर यह पत हाथ में प्राया भीर पढा। उमें तिनार माया कि 'एक नो कुसाल बडा ही रूपवान है भीर दूमरा इस प्रवार यह पड़ेगा तब सो राजा उमे ही राज्य देगा।' राना की अपना साजा की दिवारत विन्दुत बहुती हुई हमी। इसमें ईट्या के विष्य बार्ग वह भीर कर हो गई। मिह्न ब्यता योग में उसे भानी देखा को सफ इसको ही जींज भा सूस गई। उसने मीचा कि 'राजा कि इस पत्र में कुरा। जा पढ़ाने का निर्देश देने हैं हुना। 'प्रयोगनाम, पढ़ा दिवार है हम इस में 'हैं सहर पर ही यह में एक दिन्द तमा



पालन न करके कालक्षेप करना चाहिये। तीन बार आदेश आने की अपेक्षा तक उसकी मर्यादा है। क्षरण का विलब करने से प्रहर मिलता है, प्रहर का विलब करने से दिन मिलता है और दिन का विलम्ब करने से विशेष काल मिलता है। इस प्रकार कालक्षेप करना उचित



है। परन्तु कुमाल के लिए अपने पूर्व भव के कृत कर्म इस प्रकार भुगवने का भावि निर्मित हुआ होगा, श्रतः कुमाल ने काउक्षेप न

व्याकरण पडने की आवश्यकता :

धानी वात है अधार के घटाने बढाने से होने ताल अन्तर की 'मार्गेगताम्' ते रणान पर 'अपीयताम्' होने में गुन्पाय की खौन

सनातनी आगेवान पांडत का नाम देवीदास गर्मा था, इस लिये उमने कहा कि 'देवीदास सरमा ! सुनो।'

'शर्मा तो गोत्र था जबिक 'सरमा' का ग्रर्थ कुतिया होता है इसिन्धि देवीदास शर्मा एकदन आवेश मे ग्रा गए। सनातियो ने ग्रार्य समाजिस्ट पण्डित ने हमारे पंडित को 'कुतिया' कहा—ऐसा मानकर उपद्रव किया।

त्रत ट्याकरण के श्रव्ययन की भी परम श्रावण्यकता है जिसमें कीनसा शब्द किस वर्ण का है इसका घ्यान रहे श्रीर अक्षर भेद में कैसा श्रथं भेद हो जाता है वह भी सनभ में श्रा जाए।

अक्षर बदलने पर अर्थ भी

बदल जाता है:

जहां अधार फिरा कि अर्थ भी फिर जाता है, सूत और मर्थ दोनो बदा जाते हैं अत. द्यंजन रूपी श्रुतोपचार भी बरावर निभागा चाहिये। प्रतिक्रमण के सूत्र प्राय. अगुद्ध बोते जाते हैं। उसमें कोई नोई तो वर्ग भेद बाला उच्चारण करते हैं। गबणे गमभगा चाहिये कि गच्चा लाभ गुद्ध बोलने में ही है। मन्याक्षर जैसे सूत्रों को अगुद्ध बोलने से कैसी हानि होती है, उसे आप नहीं ममभ पत्रों को अगुद्ध बोलने से कैसी हानि होती है, उसे आप नहीं ममभ पत्रों को अगुद्ध बोलने से की पुत्र उच्चारण से पत्रों की आप पत्रों को आप पत्रों की नो पुराने दिया जाना, उसी प्रकार श्राजवना पत्र प्रतिवासी माने की भेदार जैसी पराहें सकता होती है। अप को पत्रा नहीं होगा कि इस अग्रार जैसी पराहें सकता है। अप को पत्रा नहीं होगा कि इस अग्रार अवस्त होगी है सह उनसे जिया करते हैं।



आठवां ज्ञानाचार :

ग्राठवा ज्ञानाचार 'सूत्र' ग्रीर 'ग्रर्थ' दोनो से सम्बन्धित हैं। छठे ग्रीर सातवे ज्ञानाचार का ग्राचरण करने मे सावधान वने हुए इस ग्राठवे ज्ञानाचार का तो स्वाभाविक रूप से ही ग्राचरण करने वाले वन जाते हैं। यदि ऐसा है तो ज्ञानोजनों ने इस ज्ञानाचार को ग्रलग क्यों कहा ? ऐना प्रश्न उपस्थित हो सकता है। ऐसे प्रश्न का समाधान यह है कि कई ऐसे होते हैं जो मात्र सूत्र को ही लाधते हैं। को सूत्र कई ऐसे होते हैं जो सूत्र तथा ग्रर्थ दोनो को ही लांधते हैं। जो सूत्र वोले, वह ग्रजुद्ध वोलते हैं तथा जो ग्रर्थ करते हैं वह भी गलत करते हैं। ऐसो को बचाने के लिये यह ग्राठवा आचार है। सूत्र ग्रीर ग्रयं दोनो का शक्ति सामग्री के ग्रनुसार ग्रीर योग्यतानुसार ज्ञान स्वादन करने का प्रयत्न करना चाहिये।

ये आठों ही आचार शोभा भी बढ़ाते है और श्रयोभागी बनते हैं।

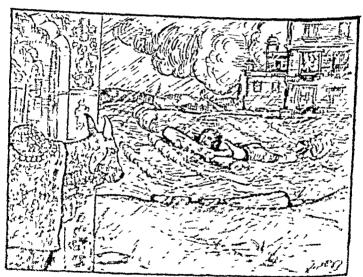
इस प्रकार हम ग्राठो ही ज्ञानाचरों के सम्बन्ध में काफी विनारणा कर ग्राण है। यह श्रो भगवतीजी सूत्र इन ग्राठो प्रकार के ज्ञानाचरों में परिवृत है। ये आठो ग्राचार 'प्रवचनोपचार' के नाम में परिवित करवाए गए हैं। ग्रर्थात् इन ग्राठ आचारों के पालन में प्रवं की मित्त रही हुई है। इमलिये इन आठ ग्राचारों को टीकाका मार्थान ने 'नार' ननाया है। 'नार' ग्रर्थात् मुन्दर मनोहर। वास्त्र में शान के में घाठ आचार बहे ही गुन्दर और मनोहर है। इन प्रवं गाना में ज्ञान थीर ज्ञानोपाजन का प्रयत्न दीव्त हो जाता है। ज्ञान को त्री शानाध्यमन को नगा ज्ञान दान को भी दीव्य करने वार्म को उत्तर हो। ज्ञान हो।



है। यह काटना, देना ग्रीर स्थापित करना ग्राशिक रूप मे होने से ही इस श्री भगवतीजी सूत्र को जयकु जर की उपमा दी गई है। ग्रात्म-विजय के लिये, यह सूत्र लोकोत्तर ही है।

उत्सर्ग और अपवाद रूपी घण्टायुगल का धोष:

टीकाकार महर्षि ने जयकुंजर के साथ तुलना करते हुए इस श्री भगवतीजी सूत्र को दिए हुए विशेषणी मे से ग्रठारह



विभेषां को तो हम देश आए है। अब उन्नीमने विशेषाम् के रूप में दीनकार महीप परमाने हैं कि—

िरसामियावयारममुद्यापातुरस्याराषुमलघोषामः।" अवत् व्यक्तिरासी जेमे सावस् स्व मे उद्देशी श्रीर

परन्तु विराधना है। इसी प्रकार अपवाद के स्थान पर उत्सर्ग के सेवन मे आराधना नहीं परन्तु विराधना है। ग्रतः उत्सर्ग का स्थान कीनसा ग्रीर ग्रपवाद का स्थान कीनसा— इसका निर्णय करने में भारी कुणनता की आवश्यकता रहती है। मार्ग का मुन्दर ज्ञान चाहिये, तथा सूक्ष्म बुद्धि भो चाहिये।

च्याख्याता उत्सर्ग-अपवाद का ज्ञाता होना चाहिये :

इमिलये तो उत्मर्ग मार्ग ग्रीर ग्रपवाद मार्ग के जाता नहीं वने हुए साधुग्रों के लिए भी व्याख्यान करने का निपेध किया गया है। दोनो मार्गों का ज्ञान न हो, तो उत्मर्ग मार्ग का ऐसा मड़न कर बैठे कि जिममें श्रोताग्रों को ग्रपवाद मार्ग मानो पाप मार्ग ही है— ऐसा ग्राभास हो जाए ग्रथवा ग्रपवाद मार्ग का ऐसा मड़न करें कि जिममें श्रोताओं को उत्सर्ग के प्रति जो हढ ग्रीति उत्पन्न होनी चाहिये वह हड ग्रीति उत्पन्न नहीं हो पातों और उनका मन ग्रपवादों का मेवन करने नी ग्रोर ललनाया करता है। व्याख्याता यदि दोनों प्रकार के मार्गों का यथाय ज्ञाता हो तो उनसे वैसे ग्रनथं उत्पन्न नहीं हो मकना।

उत्सर्ग मार्ग और अपवाद मार्ग किसे कहते हैं:

उन्मार्ग सिमे बहते हैं? रत्मत्रयी वी प्रारायना वा मर्प-नातान्य जो निष्मार्ग है उसे उत्सर्ग कहते हैं। तब अपनाद मार्ग सिमे तहते हैं? रत्नव्यों तो आसानना के सर्व नामान्य विधि मार्ग रूप जन्में मार्ग पर का रहे आताओं को जिल्लेष समीप उपिथा होने पर के प्रपत्ती प्रतिका से आह न हो जाएं, मार्ग से चपुन न ही जाए, इस प्रशास के सामान्य विधि सार्ग से अस्या अनुपा उपमें कि । कि दो जिसा प्रसार मार्ग विधा भरता कर असे मर्ग मामान्य रिक्त हो अस्ता का दनाल स्टाल का जो मार्ग है इस प्रसार

जाए- ऐसा भी संभव है न ? इन सभी परिस्थितियों में प्रथवा ऐसे ही अन्य शक्य प्रसग उपस्थित होने पर प्रचलित विधि मार्ग के अनुसार रत्नत्रयी की आराधना को जारी रखा जा सकना संभव न हो तब क्या किया जाए ? ऐसे समय में किस किस प्रकार से वर्तन कर रत्नत्रयी की आराधना में टिका रहना चाहिये- इस सबध में जो उपाय बताए गए है वे अपवाद मार्ग है। जो उत्सर्ग में नहीं आया, उसे तो अपवाद मार्ग की आवश्यकता ही कहा होने वाली है ? अर्थात् 'अपवाद मार्ग भी एक प्रकार का मोक्ष मार्ग ही है, अतः मैं तो इस मार्ग पर चल कर कल्यागा साधना करूंगा-' ऐसा जो मानते हैं या बोलते हैं, वे तो मार्ग के रहस्य को समभे ही नहीं हैं। मोक्षार्थी जीवों की हिंद तो उत्सर्ग मार्ग की और ही होनो चाहिये। अपवाद मार्ग तो कारण विशेष में किसी व्यक्ति विशेष के लिये है। कई अपवाद मार्ग तो कारण विशेष में किसी व्यक्ति विशेष के लिये है। कई अपवाद ऐसे भी है कि कई जनो को नित्य बार बार सेवन करने पडते हैं परन्तु उन्हें भी अपनी हिंद्द तो उत्सर्ग मार्ग के सेवन की और ही ररानी चाहिये।

उत्सर्ग मार्ग की भांति अपवाद माग का अनुसरण करने मे भी आराधन फैसे- यह बताने वाला उदाहरण:

प्रश्न- श्रपवाद मार्ग में उत्सर्ग मार्ग से बिल्कुन विपरीत प्रकार का ग्राचरण भी हो सकता है ग्रीर उसमें भी विराधना ने गिनी जाए पर श्राराधना गिनो जाय, ऐसा श्रापने कहा यह बरावर गमफ में नहीं श्राया। इनका विशेष स्पष्टीकरण हो सो श्रन्धा रहे।

इसी जिए पर उदाहरमा हो ला। एक राजा निष्या हिन्द था। भीर जैया मिथ्यान्य में गहे हुए था बैनी हो उसकी रानी सम्यक्त में दें। की स्थाप और सती के बीच इस जियम में कई बार जना के सम्बद्ध साम प्रमुख नहीं की अपनी मान्यास संस्कृत नहीं की

राजा को इस बात से ग्रत्यन्त खेद हुग्रा। उसे मिथ्या धर्म पर खेद नही हुग्रा, परन्तु उसके धर्म की निन्दा हुई इससे उसे खेद हुग्रा। ग्रव वह दु.ख मे ही दिन बिताने लगा।

रानी को भी उस वात का पता था। उसे लगा कि जैन साधु साध्वी की निन्दा सुनकर मुभे कैमो वेदना होती थी, उसका राजा को ज्ञान करवाने का यह सुन्दर अवसर था। और राजा का यदि इस कारण से भी मिथ्या धर्म पर से राग जाए और सम्याधर्म पर उसके हृदय मे राग पैदा हो तो अच्छा ऐसा भी रानी के हृदय मे था। इसलिये, उमने अवसर देखकर सन्यासिनी की बात निकाली। और राजा से कहा—देखा न श्रीप जिसकी बदुन-बहुत प्रणसा करते थे, यह सन्यासिनी कैसी निकली? कुँए मे हो वह कुण्ड मे आता है। धर्म अच्छा हो तो उसका आचरण करने वाला भच्छा हो और धर्म युग हो तो उसका आचरण करने वाला भी बुरा होता है एममे आएचर्य जैंगी कोई वात नहीं है।

रानी के इन बचनों ने, राजा के हृदय को बीधने में तीक्ष्मा का नाम किया, परन्तु बहु निपरीत रूप से। सन्यामिनी व्यभिना-रिगी मिछ हुई थी, अनः उम विषय में तो मुछ बोतने जैसा रहा न या परन्तु राजा ने कहा कि 'जैन साधु मैंसे बुरे होते हैं वह भा में तुम्हें दिसा दूँगा। उसी समय राजा ने मा में गाँठ बाँधी कि सर्वि अनसर नित्ते तो जैन साधु की अदमाण के रूप में बदनागी हो ऐसा

राक्षा ने प्राने एक अति विश्वाम पाम व्यक्ति की कर्त पत्ती रिकोई दोन गर्तु कार्ने नगर में खाए, तो जनता ध्यान रामना और भर्षे भर्ग देना र

नही ग्रथवा ऐसा ग्राप करते है कि नही इसका विचार आपको करना है।

राजा की ग्राज्ञानुसार ही उसके विश्वासपात्र व्यक्ति ने सारी व्यवस्था की । राजा के निजी गुप्तचर प्राय. वडे कुणल होते हैं।

कामदेव के मदिर पर ताला लगाकर वह राजा के पास पहुँचा ग्रीर कहा कि आपकी मभी ग्राज्ञा का सर्वाग्र मे पालन कर दिया है। यह सुनकर राजा के ग्रानन्द की सीमा न रही। राजा ने रानी से कहा—'तेरा एक जीन साधु नगर के वाहर कामदेव के मन्दिर मे रात को रहा है। प्रात हमें वहाँ जाना है।'

रानी समक्त गई कि दाल में कूछ काला है। परन्तु उसके हृदय मे जैन साधु के प्रति पूर्ण विश्वास था, ग्रतः वह व्यथित नहीं हुई। व्यथित न होने पर भी उसे सारी रात चैन न हुई।

राजा ने ग्रपने मन्त्रियों, सामन्तों और नगर जनों को भी कहत्वा दिया कि 'प्रात राजा नगर के बाहर कामदेव के मन्दिर में रात रहे हुए जैन साधु को देगने के लिए जायेंगे, श्रत. सभी को वहां आना है।'

उतनी व्यवस्था करके राजा ने उसी रानी के साथ सारी रात गुग बन में विलाई। रानी जैसी धर्मशीला थी, वैसी ही पित भक्ति ना में भी थी। धर्म की बात के मिलाय पित को किसी प्रकार में प्रतिकृत हो-एमा बर्तन पह कभी भी नहीं करती थी। राजा की, श्रामित के सिवाय प्रतिक इच्छा का वह अनुसरण करती थी। राजा वे दिला गई भी राजा के इिताकार मात्र में ही राजा के अभिवान का बहु कमक गामी भी भीर तदमुनार प्रनेत कारती थी। उसके में भी राजा के प्रति दुनीय नहां था, परन्तु राजा को मिक्स



है, उन्हें भी संयम के उपकरणों का सम्मान तो करना ही चाहिये सामान्य परिस्थितियों में तो सयम के उपकरणों का ग्रवहुंमान मात्र भी हानि करता है, तो फिर सयम के उपकरणों को जला देने की बात में तो कहना ही क्या हो सकता है ?

श्रापको श्रपवाद मार्ग का ख्याल करवाने के लिये यह बात हो रही है। श्रपवाद मार्ग मे चलने पर भी, उत्सर्ग मार्ग से वित्कुल विपरीत प्रकार की किया करने पर भी श्राराधना ही हो और विराधना न हो-यह कथन समक्ताने के लिय यह बात है। श्रपवाद को श्रस्थान पर श्रथवा गलत प्रकार से सेवन करे उसकी यह बात नहीं। श्रपवाद के स्थान पर ही श्रपवाद का सुयोग्य प्रकार से सेवन करे उसकी यह बात है।

उन साधु महात्मा ने तो एक मात्र लगोट लगा दी श्रीर ढटें का वाबों के डण्ड जैसा टण्डा बना दिया। इसके मिवाय सारे ही सयम के उपकरणों को जला दिये श्रीर पुलगा कर उन्हीं की राख को अपने सम्पूर्ण शरीर पर मल दी।

ऐसे प्रसग का वर्गन करने का या पढ़ने का यदि उत्सर्ग मार्ग के साथ अपवाद मार्ग को नही जानने वाले के हाथ में आ जाए ती नह नया करेगा रे महा आरायक साधु महात्मा को वह तो महा विराधक ही मानेगा और कहेगा न रे केवल व्यवहार नय के साथ निपने रहने वाले और निश्चय नय को नहीं जानने वाले, नहीं माने माले लिया जह ऐसे प्रसगों में आमानी से पिट सकते हैं। अतः व्यान्यान का अधिकार उन्मर्ग मार्ग तथा अपवाद मार्ग नअभय मार्गों के आला गी। शर्व को दिया गया है वह सोग्य है न रे

रामहार में तो आप हो मी बाते भी छा समफ तेते हैं। आप हो रागडाल मती के पमह ना तो पता होगा। श्रीमक उन मकडात मंत्री बुद्धे शिष्टिक पुत्र था और उसी श्रीमन ने भरी मना में, यात की उप

पास ग्राया । सवको उसने कहा कि जैन साधु कैसे वदमाश होते हैं - 'इसे देखो ।'

एसा कहकर उसने कामदेव के मदिर का द्वार खुलवाया। जैसे ही द्वार खुला कि तुरन्त ही 'अलख' करता हुआ वावा वाहर आया। सभी ने देखा कि यह तो जैन साधुनही, परन्तु वावा है।



राजा तो दिए मृत हो गया। उसने अन्दर पा। तमवामा तो भेग्या के मियाय वहा कीई न या। रानी ने कहा-भहाराण । आण कहाँ से द कि जैन माथ है। जैन साथ, आप सोचते हैं येंगे होते ही

होता है, वैसा ही ग्रहिसा का परिगाम ग्रपवाद मार्ग की किया करने वाले के हृदय में भी होता है। कदाचित् ग्रपवाद मार्ग की किया के समय ग्रहिसा का परिगाम ग्रविक प्रवल बने, ऐसा भी हो सकता है, क्योंकि लक्ष्य ग्रहिसा की ग्रोर है ग्रीर ग्रांशिक हिंसा वाली भी जो किया करनी पड़ती है, उसके प्रति ग्रहिच है। ऐसा होने के कारण अपवाद मार्ग का ग्राचरण करने वाले उत्सर्ग मार्ग का ग्राचरण करने वाले की भाति ही भगवान के ग्राराधक हैं, परन्तु भगवान की ग्राज्ञा के विराधक नहीं।

अपवाद वचने के लिये है:

फिर भी सर्व सामान्य प्रकार से उपदेश्य ग्रीर ग्राचरणीय उत्सर्ग मार्ग की सारी ही वाते श्रापको कहनी हो तो कही जा सकती है, परन्तु श्रपवाद मार्ग की सारी बाते श्रापको नहीं कही जा सकती। साधुपन ने भी सभी को श्रपवाद मार्ग के दर्शक सूत्रादि पढाए नही जा सकते। श्रति परिएात श्रीर श्रपरिएात दोनो ही प्रपवाद मार्ग को जानने के लिये ग्रयोग्य हैं। बहुत ही मुयोग्य और विचक्षण साधुग्रो की ही अपवाद मार्ग के प्रदर्ग क सूत्र पढ़ाये जा सकते है । इसमे कहना पड़ता है कि श्रतिचार जैसे सेवन के लिये नहीं है परन्त जानने के लिये है भीर जानार अवगर आने पर यह भग का उपाय गोजित किया जा मो उसके लिये है, उसी प्रकार अपवाद भी आचर्सा करने हेतु नहीं, परन्तु ज नने के दिये हैं और जानकर अवसर आने पर यत भग से यगर्वे का उतित उपाय गोजित किया जा सके इनके तिमें है। उत्मर्ग मार्ग को भल कर, उसकी उपेक्षा कर, उसमें विभूत बनकर जो अप-राज मार्ग रा लाभग लेते हैं. वे असाधक नहीं, परन्त् विरामण है। इसमें भार यह बात समझ महे होंगे वि अपनाद मार्ग का विधान करने हे भी सदय सो एनसमें सामी की रक्ता का ही है।

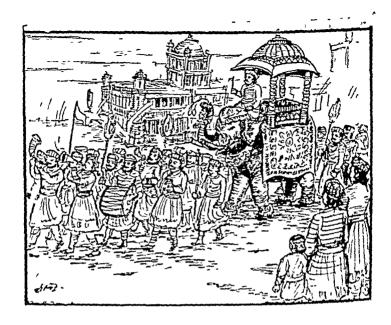
श्रीर कहा 'श्ररे कच्चा पानी तो पीया लेकिन उससे छानना भी भूल गया ?'

इस प्रकार ग्रपवाद के स्थान पर ग्रप्वाद सेवन न कर, उत्सर्ग के साथ चिपके रहने वाला शिष्य चारित्र्य से चूका, नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

समर्थ भी असमर्थ से अपवाद

का सेवन करवाता है:

ग्रपवाद का स्थान निश्चित् करने मे, व्यक्ति के परिगामो की श्रोर, शक्ति की और सयोगों की श्रोर देखे विना नहीं चलता। ऐसी भी सत्व शील ग्रात्माएँ हो सकती है जो ग्रपथाद का ग्राचरण न करें ग्रीर परिएगमों में भी परिवर्तन न ग्राने दे। चाहे जैसी स्थिति में परिस्माम न तदलने देने मे शक्तिमान भ्रपवाद का भ्राश्रय न तें तो उसमे उसकी प्रशा होती है, जब कि सहन करने मे अशक्त और इससे परिसामो को टिका सकने में शक्ति विहीन, और उत्सर्ग मार्ग को ही निपका रहे तो दुष्यिन में मरे और मार्ग से अव्ट हो ऐसा यदि अपयाद का यथा योग्य प्रकार से आश्रय लेकर भी अपनी चारित्रम के-रत्नमयी की श्राराधना के परिशामो को टिका ले श्रीर पुनः उत्सर्गं के मार्ग पर श्रा जाये तो उसकी प्रमाना होती है। इसीः निए तो प्रययाद का प्राचरम् किये विना ही उत्मर्ग के मार्ग में गुः रियर रहने मे समय धात्माएँ भी पाम रहनार धन्य असमय मात्मामो को मप्ताद का सेवन करवाती है भीर उसकी दम प्रकार रक्षा कर लेती है। ने अपनार मार्ग का यथायोग्य प्रशार से भीर गर्थाः मोग्य रकात पर श्राध्य गेने पागा की निन्या नहीं बारते परानु हम प्रकार की वे मार्गरा गर्ने पर्ने की कीशी चिन्ता बाने हीने हैं ऐसा रेरका करते है। यापवाद भागे का सेवन करने वाले उत्मर्ग गागे वे



२२ यशः प्रसार

यश रूपी पटह :

इस श्री भगवतीजी सूत्र की जयकुं जर के साथ तुलना करते हुए टिशार महींप बीमने विशेषसा के रूप में फरमाते हैं कि—

'यश पटहरदुप्रतिरवापूर्गंदिक् चक्रयालस्य''

भ्रवित् जयमु जर के भ्राम जीमें होते की ध्वति होती है और उसकी भित्रकात मानी दिकामों में प्रसारित होती है उसी भ्रकार इस ध्वो भएवतीजी सूच भी ग्रम क्षी दुंद्धि ऐसी पट्ट है कि उसमें कि को कि उसमें

२३: स्रंकुश के रूप में स्याद्वाइ:

स्याद्वाद रूपी अंकुश:

इवर्नासवे विशेषण् के रूप मे टीकाकार महर्षि फरमाते है कि 'स्याद्वादिवशड कुशवशीकृतस्य।'

त्रयांत् जयकुजर जैमे वडे ग्रंकुण से वण मे किया हुमा होता है, उमी प्रकार यह श्री भगवतिजी सूत्र भी स्याद्वाद रूपी विशास संकुण से वणीकृत किया हमा है।

स्याद्वाद का प्रताप:

स्याद्वाद अर्थात् वया ? यदि आपको सदीप में और स्यूत रीति से स्याद्वाद समभता हो तो कहा जा सकता है कि किमी भी छोटे गा बड़े निरुपण के यात्रम में से 'हीं' को निरुप्तना और उसके स्थान पर'भी'की स्थापना गरना स्याद्वाद है स्याद अस्ति और स्पात् न्यास्ति आदि पउति में आप स्याद्वाद को नहीं समभ गाते वयोकि आप दर्भ पटे एए नहीं है। उपकारों महापुरुषों से स्यात् पद निरुपण ए।अ में दिना अधिय आवश्यक है और स्यात् पद को अत्यक्ष या पराज एप में भी मधूरीत स्थि विना निरुपण में कैमा एकाणियन भा राथ है ज्या स्थान् एद के बद्द एवं पद में पहले रहने में कैमा

क्या इन दोनों के बीच मात्र पिता पुत्र का ही सम्बन्घ रहा होगा? पिता-पुत्र और पुत्र-पिता क्या ऐसा नहीं हुँमा होगा ? क्या यह परस्पर पति-पत्नी या भाई वहिन के सम्बन्धों से नही जुड़े होगे ? इस प्रकार नाना सम्बन्ध हुए होगे। क्या इन सम्बन्धों को लक्ष्य में रखने बाला ऐसा कह सकता है कि 'ये मेरे पिता ही है ?' ऐसा तो नहीं कह सकता परन्तु इसी 'ही' को सापेक्ष बनाकर वह ऐसा भी कह सकता है। इस भन की उपेक्षा से पिता पिता हो है यह बात निर्विवाद हैं। श्रतः इस भव की उपेक्षा रखकर 'ही' का प्रयोग करना ता हो सकता है परन्तु सर्वथा निरपेक्ष रूप से 'ही' का प्रयोग हो ही नही सकता। • जहां सभी अपेक्षाओं को संग्रहीत कर बात करनी हो तो वहाँ ये मेरे पिता भी है ऐसा कहना पडता है अयवा ये मेरे पिता ही है ऐसा कहने वाले को मन मे समफता चाहिए कि यह बात इस भव की भ्रपेक्षा से हैं। ऐसा समभकर वह वो उता हो तो वह मिथ्या नहीं हैं। उसे जब ऐसा कहा जाय कि भवान्तर मे ये तेरे पुत्र भी हो सकते हैं, तेरी पुत्री भी हो सकती है तेरी परनी भी हो सकती है श्रीर तेरे भाई धादि मादि भी हो सकते हैं तो इस वान को भी वह अवश्य स्वीकार मरेगा।

स्याद्वाद की अमोध शक्ति:

इससे आप समभे होंगे कि स्याद्वाद में कितनी अमीव शिक्त रही हुई है पदार्थ मात्र अनन्द धर्मात्नफ हैं। कोई भी पदार्थ ऐसा नहां जिसके अनन्त धर्म नहों। अब जब बात होती है तब अन्य धर्मों की एक साथ बात नहीं हो सकती। बात एक धर्म की हो कि में। चानन्यमों को एथ्य में रन्या जा सकता है। अन्येक पदार्थ के जो अवन्य धर्म है उनमें से किसी भी धर्म का अपनाप न हो सके पौर पदार्थ के किसी भी एक धर्म को बात बजने में मिथ्या सिद्ध न हो

शास्त्रों का एक एक वाक्य स्याद्वाद रूपी अंकुश से युक्त है और इसीलिए श्री जैन शास्त्रों के एक भी वाक्य को मिथ्यात्वी के रूप मे वहीं कह सकता है जिसकी बुद्धि मिथ्यात्व से भ्रमित हुई हो। प्रत्यक्ष रूप से स्यात् पद युक्त ही है चाहे न भी हो तब भी स्याद्वादी का वचन स्यात् पद से युक्त ही है ऐसा समभाना चाहिए। यह बात सच्ची है कि मिथ्या हिष्ट जीव स्वरूप से सम्यक् इस श्रुत के कथन को भी मिथ्या श्रुत के रूप मे ग्रहण करने वाला बन जाय परन्तु इतने मात्र से इस श्रुत को मिथ्यात्वी नहीं कहा जा सकता क्योंकि मिथ्या दृष्टि जीव सम्यक् श्रुत को मिथ्या रूप में ग्रहरण करे तो इसमें दोष सम्यक् श्रुत के कहने वाले का नहीं परन्तु उसे मिथ्या रूप में ग्रहरा करने वाले के मिथ्यात्व का दोप है। इसीलिए तो आगे के विशेषणा में यह यात भी आने वाली है कि यह श्री भगवतीजी सूत्र मिध्यात्व वादी रिपुत्रों के दलन हेतु नियुक्त किया हुम्रा है। यदि यह सूत्र ही निथ्या वाक्यों से भरा हुआ होगा तो वह मिथ्यात्व का दलन करता या मिश्यात्व को बढाता ? तात्पर्य यह है कि स्याद्वाद रूपी अ कुण रहित वाषय मिथ्यात्वी है । जबकि स्याद्वाद रूपी ग्रंकुण वाले वानय मिथ्यात्वी नहीं है।

नित्यानित्यत्व .

यह विशेषण यह भी बताता है कि स्याद्वाद की हृष्टि की लक्ष्य में राक्तर ही श्री भगवतीजी सूत्र को पढ़े, पढ़ाएँ, वाचन करें, यानन करवाये, मुनें श्रीर मुनाएँ। अनेकान्त हृष्टि में ही वस्तु का पतार्थे शान होता है। इस श्री भगवतीजी सूत्र को भी यदि एकान्त हृष्टि में भी पटा जाय, तो महुपयोग से सद्गति की प्राण्य करयाने वाला यह सूत्र दुरुपयोग में दुर्गति में प्रयोग ने जाता है। इसी त्रि शास्त्र पतार है। इस शास्त्र हुरुपयोग की प्रारम्पना कर्षे पतार विदे और विराधना कर प्रमुख हुरें हैं। एदि स्थापन कर्षे

२४ : हेतु रूपी शस्त्र

हेतु रूपी शस्त्रों से सहित:

श्रव बाईसवा विशेषणा । इसमे श्री टीककार महर्षि फरमाते है कि—

विविघ हेतु हेति ममूह समन्वितव्य।'

प्रथात्—जयकु जर हाथी जैसे विविध हेतु वाले शस्त्र समूह से समन्वित होता है, वैसे ही यह श्री भगवती जी सूत्र भी विविध हेतु रुपी शस्त्रों के समूह से समन्वित है।

हाथी को जग युद्ध में भेजने हेतु अथवा युद्ध में ने जाने हेतु तयार किया जाता है, तब उसके ऊपर की अंबारी में तथा उसके उपर जाने जाने बाते बरनर के भाग में शस्त्र रसे जाते हैं। में शर्म विधिध हेनुओं बाते होते हैं। अपनी रक्षा करने के हेनु से रसे हुए शस्त्र भिन्न होते हैं त्रीर शत्तु नो मारने के हेनु से रसे हुए शर्म भिन्न होते हैं। शत्रु को मारने के शर्मों में भी ऐसे भी शहर होते हैं। जिन्हें फेह कर शत्रु को मारने के शर्मों में भी ऐसे भी शत्रु होते हैं। जिन्हें पानि हाय में रस्कर ही शत्रु को मारा जा मकता है। इसके शस्त्रों में भी ऐसे अजनार के शर्म होते हैं। अत्रु को भीर में फेंसे मंगे



इन्हें शस्त्रों की जो उपमा दी गई है वह उचिन है। सच्ची बात की मिथ्या करने में और मिथ्या बात को सच्ची सिद्ध करने का प्रयत्न करने वाले भी हेतुग्रों रूपी शस्त्रों का उपयोग करते है। शस्त्र तो ऐसी वस्तु है कि उपयोग में लेना ग्राये तो शस्त्र बाला ग्रपनी रक्षा कर सकता है ग्रीर शत्रु को भी मार सकता है, जबिक उपयोग में लेना न ग्राए तो उभी शस्त्र से स्त्रय मरता है ग्रीर शत्रु को विजय प्राप्ति होती है। शस्त्र का दुरुपयोग भी होता है ग्रीर सदुपयोग भी होता है। इसी प्रकार हेतु सामने रखने की जानकारी तिराती भी है ग्रीर मारती भी है। श्री भगवतीजी सूत्र में जो हेतु दिये गये हैं, वे सत्य तत्वस्वरूप को सच्चे मार्ग बताने के लिये दिये गए है।

हेतु देकर क्रमशः बढ़ता हुआ

उपकार साधा जा सकता है

इस पर से यह भी वात ध्यान में रखनी है कि व्यक्ति को अपनी वात, अपनी वात अर्थात् भगवान द्वारा कथित परन्तु अपने मुख से कही जाने वाली वात, जहां तक हो सके वहाँ तक सहेत कहनी चाहिये। जैमें 'ससार असार हैं' ऐमा कहकर मात्र इतना ही कहा जाय कि भगवान ने संसार को असार कहा है अतः समार अमार है, तो ऐसा कहना सम्बंदिश के लिए योग्य नहीं है। धर्मोपदेश को इस मसार के स्वरूप का इस प्रशार वर्शन करना चाहिए कि जिससे श्रोताओं को लेंगे कि बानन में समार अगार हैं। इस प्रकार हेनु देकर 'ससार अमार हैं'—ऐसा सम्भाय जाए तो इससे श्रोता के सन में भगवान के प्रति बहुमान को पृति होगी। श्रोता को लोगा कि 'भगवान ने जो लगा है यह सब्दा ही कहा है' इस प्रकार का विश्वास पैदा होगी, प्रयोद 'सोश के जिए ही प्रयत्नशील यनने जेगा है'—ऐसी बात होगी, प्रयोद 'सोश के जिए ही प्रयत्नशील यनने जेगा है'—ऐसी बात हो था। श्रीता के स्वरूप के जाता ही कहा है उस भाग की बहुमान श्रीता हो स्वरूप के जाता ही सह ही प्रयत्नशील यनने जेगा है'—ऐसी बात हो था। स्वर्ण के जाता ही सह ही प्रयत्नशील यनने जेगा है'—ऐसी बात हो था। स्वर्ण के जाता ही सह ही प्रयत्नशील यनने जेगा है'—ऐसी बात हो था। स्वर्ण के जाता ही सह ही प्रयत्नशील यनने जेगा है'—ऐसी बात हो था। स्वर्ण के जाता ही सह ही स्वर्ण के स

ग्रॅतः इसी प्रकार है'—तो इस बात में उन्हे भगवान के प्रति ग्रुक्ति न होगी। वे समभ लेगे तो ये विषय ही ऐसे हैं जिनमे हेतु नहीं कहते। ये विषय यदि हेतु गम्य होते, तो इन्हें भगवान आज्ञा ग्राह्म नहीं कहते, बिल्क उन्होंने हेतु दिये होते। ग्रतः हेतु गम्य विषयों में हेतु ग्रवण्य देने चाहिए। हेतु गम्य विषयों में हेतु न देना स्व-पर के लिये अहितकर है। हेतु देने से जैसे रुचि पैदा की जा सकती है वैसे ही हेतु न देने से श्रोताग्रो को ऊवाने का पाप भी सिर पर मढ जाता है।





देने वाले होते है। सूत्र की योजना भगवान श्री जिनेश्वर देव करते ही नही । सूत्र गूथन तो गराधर भगवान ही करते है । भगवान श्री जिनेश्वर देव गराधर देवो की स्थापना करने के पश्चात् उन्हे त्रिपदी मात्र का दान करते है श्रीर वह त्रिपदी भगवान के श्री मुख से श्रवण करने मात्र से गए। धर भगवान की ब्रात्माये, ब्रयने-अपने मतिज्ञाना-वरणीय ग्रीर श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के ऐसे उत्कृष्ट कोटि के क्षयो-पशम भाव को प्राप्त करते है कि जिसके कारण वे गण्धर-नामकर्म के उदय का वेदन करते हुए अन्तर्मु हूँ त मात्र मे ही द्वादशागी की रचना कर सकते है। गगाधर भगवान द्वादशांगी की रचना कर लेते हैं, तत्पश्चात् ही भगवान उन्हे तीथं की अनुजा देते है। अनुजा के बिना द्वादणागी दूसरे को दी नहीं जा सकती। गुरु की अनुजा प्राप्त किए विना किसी भी शिष्य को कोई पढा नहीं सकता - ऐसा विधान है। हमारी मूल बात तो यह है कि वर्तमान शासन मे गराधर भगवान श्री मुचर्मा स्वामीजो द्वारा रचित जो द्वादशागी परम्परागत बनी है उसे अर्थ से भगवान श्रीमान् महावीर परमात्मा ने उपदेश मे दी थी, इतना ही नही, परन्तु भगवान ने उसकी अनुज्ञा भी दी थी। भगवान ने अपनी मुहर लगा दी थी। इसलिए टीकाकार महर्षि ने यहा श्री भगवतीजी मूत्र को श्रीमान् महाबीर महाराजा ने नियुक्त किया है-ऐना फरमाया है।

श्री महाबीर महाराजा ने यह नियुक्ति जगत के जीव मिथ्या-त्वादि मची शत्रुओ का नाश कर सकें इस हेनु सो को है:

श्रीमान् महाबीर महाराजा द्वारा यह सूत्र नियुक्त किया गया है-ऐसा वर्तान के साथ, किस प्रयोजन से यह सूत्र नियुक्त किया गया है. इसका भी टीकाकार महिष्य ने स्पादीकरमा किया । विश्वा राजन, मजान स्व श्रीर अविष्मम् एप जो शत्रु मैन्स है उसका नाग



तव से उस ग्रात्मा ने मिथ्यांत्वादि शत्रु हीन्य के विरुद्ध वल प्रयोग करना शुरू किया, परन्तु इसमें जैसे कई वार शत्रु भी वाजी ले जाता है ग्रौर उसका बाजी ले जाने का मतलव है पुनः वन्धन मे डालना इसी प्रकार श्रोमान महावीर परमात्मा की ग्रात्मा के लिए भी हुँगा पुन वन्धन ग्रस्त वने हुए श्रीमान महावीर महाराजा की ग्रात्मा ने मिथ्यात्वादि रूपी शत्रुग्नो की ग्रधीनता मे बहुत समय निकाला। उसमें जब इस ग्रात्मा को ग्रवसर मिला कि इस ग्रात्मा ने लाभ उठा लिया। प्रियमित्र चक्रवर्ती के भव में उन्होंने इस शत्रु होन्य को नाम शेप करने का प्रयत्न पुनः प्रारम्भ कर दिया। उनकी ग्रात्मा को यह बात ऐसी जैंच गई कि उनके श्री नन्दन मुनि के भव में तो उन्होंने कमाल ही कर डाला।

उनकी श्रात्मा को उस समय ऐसा ही हो गया कि यदि मेरा वस चले तो में मात्र अपने ही मिथ्यात्वादि शत्रुओं का ही जडमूल से अन्त ही नहीं परन्तु सारे हो जगत के जीवों के मिथ्यात्वादि रूप शत्रुओं का हनन कर डालू । परन्तु मिथ्यात्वादि शत्रु ऐसे प्रकार के हैं कि किसी के इन शत्रुओं का कोई और ही हनन कर सके ऐसा सम्भव नहीं है । मिथ्यात्वादि रूप श्रुपने श्रुपने शत्रुमों का हनन करने का पुरवार्थ तो प्रत्येक की स्वय ही करना चाहिये। इनसे श्रीमान् महावीर परमात्मा की श्रात्मा ऐसे भावों में उत्तर्ध रूप में निमम्ब हो गई को कि 'पदि मुक्त में जिता आ जाल तो में मम्पूर्ण जमत के जावों को समभा द कि 'तुम्हारे वास्त्रिक शत्रु विश्वाद्याद्यादि श्री हैं। श्रीर इस प्रकार समभाकर इन सबको मिश्तात्वादि श्री का तनन करने राजों सन्ता उताय है, उस उताय का जात



उसे प्राप्त करने की सम्हाल रखने की और सम्रहोत कर रखने की वृति को पैदा करने वाला लोभ परम बन्धु जैसा लगता है। लोभ द्वारा पैदा की गई वृत्ति अमल मे आये इसके लिए उसे माया सह-चरी का सेवन करने मे वडा आनन्द आता है। जबकि वह विषय सामग्री की प्राप्ति आदि मे सफल होता है। तब वह मान के कारण गौरव का अनुभव करता है।

इसी प्रकार जब निष्फलता मिलती है तब वही मान वह उसे कहता है 'श्ररे तुफ में पानी नहीं इस प्रकार मान उसे सदा उत्ते जित करता रहता है इसलिये उने लगता है कि मान के बिना तो चलेगा ही नहीं। इस प्रकार लोभ, माया और मान को अपने हितकारी के रूप में मानने वाला उसके विषय मुख में वाधक बनने वालों पर क्रूड होता है इतना ही नहीं वह यह मानता है कि मुभे कोध अवश्य करना चाहिये। कोध न करें तो लुट जाये। कोध न करें तो इच्छित प्राप्त न कर मकें ऐसी-ऐसी विचारणाये वह करता रहता है। यह सारा ही प्रताप मिथ्यात्व के प्रवल उदय का है। मिथ्यात्व की क्या यह जैसी-तैमी शत्रु ता है।

चाहे जितना पढ़ा हुआ व्यक्ति भी मिश्या तत्व का उदय वाला हो तो वह मूर्ख ही हैं:

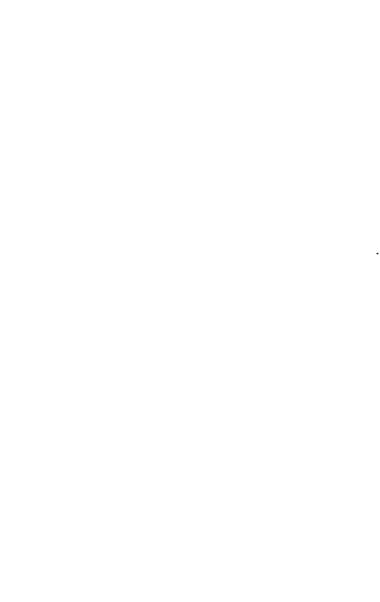
निश्पातन्य के साथ अज्ञान तो जुड़ा हुआ ही है। जहाँ तक मिट्यान्य का उदय है तब तक अज्ञान तो है ही है। अज्ञान हो इसलिये पड़ाई न हो ऐसी बात नहीं है। बहुत पढ़ाई हो ऐसा भी हो सकता है भात भाषा ज्ञान का इतिहास भगात गिमात आदि की ही पढ़ाई हो ऐसा भी नहीं है। सम्बाह शुन की पड़ाई हो ऐसा भी सम्भा हो। इस की भगरती ही शृत की भी पड़ाई हो एस भी सम्भव है। इति विकास कि दर्शों पूर्व से सुद्ध हो कम पड़ाई हो यह भी सम्भव है। इति वि

रूपी सम्यक् दर्शन गुरा को प्राप्त कर सकता है। अज्ञान तो मिध्यात्व के साथ जुडा हुँआ होने से सम्यक दर्शन गुरा प्रकट होने के साथ ही सम्यग्ज्ञान गुरा प्रकट होता है। सम्यग् दर्शन के गुरा के सुप्रताप से इस जीव का जितना अध्ययन होता है वह सम्यक् रूप से परिणित होता है। फिर वह जितना पढता है उतना भी सम्यग रूप से उसमे फिलत होता है। इसमे तत्व स्वरूप का यथार्थ वर्गोन यथार्थ रूप से रुचिकर लगे। ऐसी योग्यता सम्यग् दर्शन गुरा के सुयोग से प्रकट होती है।

इस सब पर श्रापको सोचना है कि मिध्यात्व जीव की शत्रुता का कैसा भयकर कार्य करता है श्रीर इसके योग से ज्ञान भी श्रज्ञान रूप में ही काम करके जीव के दुष्कर्मों के उपार्जन में निमित्त बनता है। जो ज्ञान कर्मक्षय का श्रीर कर्म बन्च का कारएा बन सकता है, यह ज्ञान भी मिध्यात्व के प्रताप से श्रज्ञान रूप बन कर दुष्कर्मों का कारएा बनता है, इतना ही नहीं, परन्तु किसी जीव के लिये बोधि की प्राप्ति दुर्लभ भी बना सकता है।

सम्यक् श्रुत के ,उपार्जन की आवश्यकता:

मिन्यात्व के क्षयोपश्यमादि से सम्यन्दर्शन गुगा प्रकट हुआ और उसमें तो पूर्व का जो ज्ञान प्रज्ञान के रूप में था वह सम्यन्दर्शन के रूप में बना, दरन्तु सम्यक श्रुत का बोध तो चाहिंगे न ? सम्यन्दर्शन के रूप में ऐसी भी योग्यता आई कि श्रुत मात्र का यह अपने अन्दर सम्यक् रूप में परिणामन कर सकता है, परन्तु सम्यक् श्रुत का अध्ययन सम्यन्दर्शन गुगा को स्विर करने वाला और सम्यन्दर्शन गुगा ताते की भावना को अमन में आने में बढ़ा ही महायक बने जैसा होता है। सम्यन्दर्शन गुगा को आहा हुए की भावना हैमी ? सम्यन्धान और सम्यन्दर्शन गुगा को आहा हुए की भावना हैमी ? सम्यन्धान और सम्यन्दर्शन का तथा सम्यन्द्र शाहित्य हो ही विश्वा अर्थी होता है।



में सच्चा लाभ हो, तभी विराम प्राप्त करने की भावना से लाभ सभव हो सकता है। इसलिये एकान्त रूप से निर्जरा के ग्रर्थी ऐसे भी जीव को कर्म बन्च करवाने का काम ग्रविरमण करता है। इससे यह भी जीव का शत्रु ही है।

श्री भगवतीजी सूत्र का सामर्था किसके लिये उपयोगी:

इन तीन मिथ्यात्व, ग्रज्ञान और ग्रविरमण रूपी शश्रुओ के सैन्य का नाश करने हेतु श्रीमान् महावीर महाराजा ने इस श्री भग-वतीजी सूत्र को नियुक्त किया है-ऐसी बात को अपनी शास्त्र प्रस्ता-वना में बताकर टीकाकर महाँप एंसी प्रेरणा कर रहे है कि भ्राप इस सूत्र का वाचन और श्रवण भी इसी हेतु को लक्ष्य में रख कर करना। यह बात जिन्हें त्रिय लग जाए, वे या तो सम्यन्द्रिष्ट जीव है, या मंद निथ्यात्व वाले जीव है । मन्द निथ्यात्व वाले जीव यदि सद्भाव से इस सूत्र को सुने, तो उनका मिथ्यात्व नष्ट हो सकता है, तत्व के स्वरूप का भी इस सूत्र के श्रवण से सुन्दर प्रकार का बीग होता है, और पाप मात्र से विरमण प्राप्त करने की ही प्रीरणा करने वाला यह मूत्र है। इस प्रकार यह सूत्र निथ्यात्व, स्रज्ञान ग्रीर सवि-रमरा के नाश का सामर्थ्य रराता है, परन्तु वह सामर्थ्य जीव के लिये तमी जनयोगी होता है, जब जीव इस सूत्र के श्रवणादि द्वारा इस सूत्र के उम प्रकार के सामध्ये का स्वयं उपभोग करने वाता बनता है। इसके लिये जीव को योग्य बनाना चाहिये । आप योग्यता के लिये प्रमत्तर्शाल बने भौर बनें रहें-यही एक शुभेच्छा।



रचना अन्तर्मु हूर्त मात्र में की जा सके ऐसे सुयोग्य अर्थात् गरावर नाम कर्म को विकसित कर आए हुए और भगवान के पास दीक्षित वने हुए आत्माओं को ही भगवान गरावर पद पर स्थापित करते हैं। ये आत्माएं अपनी मित से द्वादशांगी की रचना करती है। फिर भग-वान अनुज्ञा प्रदान करते है, इसीलिये द्वादशांगी की छद्मस्थ ने अपनी मित रचना की हुई होने पर भी द्वादशांगी को श्रो अरिह्न्त पर-मात्माओं के वचन के रूप में ही मान्य की जाती है।



मुनि रूपी योद्धा गण:

मुनि योद्धागरा है। श्री जैन शासन में, योद्धा का पद तो वास्तव में मुनिजनो को ही शोभा देता है। मुनि दूसरी सभी प्रवृत्तियो का त्याग कर कर्म शत्रु को खत्म करने को ग्रौर कर्म शत्रु को सहार करने की प्रवृत्ति करने की प्रतिज्ञा किये हुए है। नए कर्मी को ग्राने से रोकना भ्रौर प्राचीन कर्नो को क्षीए। करना-इसी एक लक्ष्य को लक्ष्य में रखकर उसो के अनुसार प्रवृत्ति करने की और उससे विरुद्ध कोई भी प्रवृत्ति न करने की जिन्होंने महान् प्रतीज्ञा ले रखी है, वे ही श्री जैन शासन में मुनि माने जाते हैं और तदनुसार प्रवर्तन करने वाले ही मुनि पद को उज्जवल कर अपनी ग्रात्मा को उज्जवल करते हैं भीर ग्रनेको की ग्रात्माग्रो की उज्जवलता में निमित्त बनते है। ससार के चाहे जैमे प्रचण्ड योद्धा भी इन योद्धाग्रो के सामने तुच्छ हैं। सम-रागए। में शूरवीरता से कुशलता पूर्वक शत्रुओं का संहार करने की सर्वोत्कृप्ट गक्ति रखने वाले भी दुनिया के योद्धा गए। कामादि शशुप्रों से पराजित बने हुए होते हैं, जवकि मुनि रूपी योद्धागए। वाह्य शसुग्री को क्षमादि मे जीतने वाले श्रीर अन्तर शतुश्रो को भी क्षमादि दस प्रकार के धर्म से पराजित करने वाले होते हैं। ऐसे मुनि रूपी योद्धामी को महायता ममुन्नत जयकुं जर जैसे सूत्रो की लेनी पड़ती है। इसमें उन्हें तिमी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो-ऐसा प्रयत्न करना गह मात्र श्रमग्रीपामको का ही कर्तव्य है-ऐसा नहीं परन्तु मभी का कर्त-ट्य है। न में पशु के सामने युद्ध जिन्हें प्रिय न हो, थे जिस-जिस प्रकार में उनमें प्राप्त हो, उम-इम प्राप्त में मुनि न्यी योद्धाक्षी की बाया रित पन प्राप्त हो. उमके लिये प्रयत्न करने हेनु गलवाये तिना रही नहीं। सन दीरानार महाँच ऐसा प्रयत्न करे तो उसमें ग्रास्त्यं ोंगी भी बाद हरी है।



स्वतन्त्र रूप से आचरण करने का हक छः को है, परन्तु स्वतन्त्र रूप से मार्ग प्ररूपण तो भगवान सिवाय कोई कर ही नहीं सकता :

टीकाकार महिंप के द्वारा किया गया यह स्पष्टीकरण किनना ग्रिविक सुन्दर हैं? स्वयं स्पष्टतया सरलता पूर्वक बता देते हैं कि मैं इस सूत्र की टीका किसके ग्राघार पर करने वाला हूं। इस स्पष्टीकरण में इस वृत्ति की प्रमाण स्वरूपता को प्रकट करने की शक्ति रही हुई है। पढ़ने वाले को सहज ही लगेगा कि पूर्व के समर्थ महापुरूपों ने जो कहा है, वही इन महापुरूप ने भी कहा है और इसलिय यह रचना विश्वसनीय है। टीकाकार महिंप तो ग्रपने स्पष्टीकरण में कहते हैं कि वस्तुतः यह रचना नहीं, परन्तु सथ-ठन है। मानो कि सयोजन मात्र है। इस सूत्र की जो टीका चूर्णी है उसका और श्री जीवाभिगमादि सूत्र के जो विवरण है, उनमें से जो जो ग्रण इस सूत्र के सबध में उपयोगी होने जैसे है, उन-उन ग्रंशों वा सगठन करने का मेरा यह प्रयास है-ऐसा इन महापुरूप ने प्रकट किया है। महापुरूप ने प्रकट किया है। महापुरूप ऐसा प्रकट करे इसमें कोई ग्राप्चर्य करने जैसी वात है ही नहीं।

जिस शासन में तिपदी साथ को प्राप्त कर चौदह पूर्वो सहित द्वादणागी थी रचना करने चाने धौर वह भी मात्र अपनी ही गति से रचना करने चाने गगाधर भगवान भी ऐसा ही कहते हैं कि 'भग-वान द्वारा कथित हम कहते हैं।' उस शासन में हुए धौर उस शासन के ममं को अच्छी तरह प्राप्त किये हुए महा-पूरप, 'हम पूर्व के महापुर्वो द्वारा कथित ही कहते है-गोमा कहते हैं इसमें धायन्य करने जैना है ही स्था ' धायन्य तो तब व रना होता है अविश् व भगवान के नाम को या महापूर्वों के नाम को हिशाने



'मियाँ के चाँद पर चाँद जैसी वाते करने वाले है-ऐसा कहन सुज्ञजनों का अनादर करना चाहिये।

शास्त्र देवी की प्ररणा वाले

वृत्तिया प्रनु ।लब्य हो गई थी।

प्रसांग के सम्बन्ध में : यहा प्रसग है इसलिये इस वात की और भी ध्याना

किया जाता है कि इस सूत्र की वाचना शुरू हुई, उसके निक सम्य मे परम उपकारी श्राचार्य भगवान श्रीमद् अभयदेव सूर जी महाराजा ने किस की प्रेरणा से नौ श्रग सूत्रो की टीक रचना की है इस सबध में कई वाते कही गई थी। शासनदेवी प्रेरणा के वशीभूत होकर श्राचाय भगवान श्रीमद् श्रभयदेव सूरी जी महाराजा ने नी ग्रंग सूत्रो की टीकाश्रो की रचना की ऐसी प्रभावक चरित्र में उल्लेख है।

यह उल्लेख 'दन्त कथा मात्र' के रूप मे एक मुनि श्री के हु प्रकट किया हुआ होने से स्पष्टीकरण दिया गया था कि श्रान् भगवान श्रीमद् अभयदेव सूरीश्वरणी महाराजा के समय मे इस भगवतीजी सूत्र की टोका और चूर्णि विद्यमान थी, परन्तु उनके में हो चुके श्राचार्य भगवान श्रीमत् शीलाकसूरीश्वरणी महाराजा ग्यारहो श्रग सूत्रों पर जो वृहद् वृत्तियों की रचना की थी, मेंसे स्मात्र प्रथम दो श्रग सूत्रों की वृत्तियों के सिवाय नो अंग सूत्रों का

डमीलिये प्राचार्य भगनान श्रीमद् सभगदेनसूरीरारणी गर राजा ने ती संग गूसो पर नी बहुद बृत्तिसों की रचना गी। य बात टीनाकार महर्षि द्वारा यहा किये गए स्पष्टीकरण पर से भ मिस्र होती है, बयोकि वे बहुते है पिहले हो चुकि मुनि एपी जिल्लिये न द्वारा चित्र पृति शो पृष्टि प्रभी दिश्मान ना हैं ही सोर

		•
		,
		*
		~

इस श्री भगवतीजी सूत्र की रचना की ऐसी कल्पना को भी यहां अवसर मिल जाता है।

टीका रचना रूपी शिल्पकला :

यह सब बताने बाद से, शास्त्र प्रस्तावना के ग्रन्तिम भाग में उन श्री ने जो ऐसा कि 'पूर्व हो चुके मुनिजन रूपी शिल्पियों के कुल में उत्पन्न हुए हमारे द्वारा नाडि का तुल्य यह वृत्ति शुरू होती है। यह भी विशेष भाव की सूचक वस्तु है। शिल्प का कार्य ग्रधिकाशतः परम्परागत चला ग्राता है। शिल्प का ज्ञान बहुत करके परम्परागत प्राप्त हुग्रा होता है। उत्तराधिकार में चला आने वाला ज्ञान यदि वरावर चला ग्राया हो, तो शिल्पशास्त्र के ग्रम्यास से जिस वात का ख्याल न ग्राए वैसी भी वात का ख्याल उत्तराधिकार में प्राप्त ज्ञान वाले को होता है।

टीकाकार महर्षि कहते हैं कि हमारा कुल मुनि रूपी शिल्पियों का है। हमारा कुल ऐसा है कि जिस कुल में पूर्व में बहुत बड़ी सच्या में मुनि रूपी शिल्पी हुए हैं यहां शिल्पी अर्थात् टीका आदि की रचना करने वाले समके। ऐसे मुनिजनों के कुल में उत्पन्न हम है, अतः टीका की रचना करने की शिल्पकला हमारे कुल के उत्तराधिकार में चली आई हुई है। और इससे हमें इस टीका रचना हो जिल्प कला का ज्ञान है, ऐसी मूचना उनके इस कथन से हमें मिलता है।

इस प्रकार टीकाकार महींप द्वारा रचित शास्त्र प्रस्तातना पूर्ण होती है। ग्रव वे श्री इस श्री पचमांगग्य के 'विष्राहण्यति'ऐ मे नाम की व्याल्या करते हैं।

सर्वमगलमांगन्यं, सर्वशत्याणः कारगम् । प्रयानं सर्वेत्रमाणां, जैन जयित गामनम् ।।